Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 29 • अंक 3 • जुलाई-सितम्बर 2022

मूल्य रु. 25/-

साधक अपनी वाणी तथा विचारों को ऐसा संयमित करने का यत्न करता है कि कार्य में शक्ति का अपव्यय तो होता ही नहीं, बुरे संस्कार भी ग्रहण नहीं कर पाता। वाणी को मधुमयी लोकहितकारिणी तथा आत्महितकारिणी बनाना उसका ध्येय होता है। प्रसन्नचित्तता को वह कभी भी नहीं खोता।

(पत्र-पीयूष पत्र संख्या 15)

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गम् न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 29 जुलाई-सितम्बर 2022 अंक : 3

भजन

मेरो बिगरो भाग सम्हार्‌यो।
गाउँ नाउँ कुल जाति न पूँछी नहिं कछु दोष निहार्‌यो।
तुरतहिं अति अपनाय लाय उर संकट सकल संघार्‌यो।।
दिन दूनी दुलराय प्रेम सों सत पथ पै हठि डार्‌यो।
सदा सुखद सुभ सरल सीख दै मन को भरम निवार्‌यो।।
करि बहु जतन जुगन को बिगरो जीवन मोर सुधार्‌यो।
भव सागर के अगम नीर ते बूड़त मोहिं उबार्‌यो।।
जब ते दरस दयो तब ते पुनि भूलि न कबहुँ बिसार्‌यो।
रामसरन सद् गुरु की महिमा बरनत हौं हिय हार्‌यो।।

भजन संख्या 3 **- स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'**

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोनः 01334-240058
मोबाइलः 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमन सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइलः 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन-1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेलः rcgupta1018@gmail.com
मोबाइलः 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	गुरु जी मेरी तो सारी बहार आप से है	दीपक दीक्षित	6
5.	यदि नाथ का नाम दयानिधि है		6
6.	श्री गुरुवे नमः	श्रीमती कान्ति सिंह	7
7.	पद संख्या - 66		7
8.	गीता विमर्श – श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय (गतांक से आगे) – स्वामी रामानन्द जी		8-11
9.	पत्र-पीयूष		12-13
10.	Letters to Seekers — Letter No. 5		14-15
11.	गुरु महाराज के जीवन से सम्बन्धित घटना की चर्चा		16
12.	भक्त पुरुषोत्तम	विरक्त रामभक्त श्री बनादास जी	17-18
13.	ताना		18
14.	आध्यात्मिक विकास में कबीर की सहभागिता	श्री हरि प्रकाश सिंह चौहान	19-20
15.	जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'	21-23
16.	जीवन की सार्थकता	प्रो. डॉ. चिरंजी लाल झा, गाजियाबाद	24
17.	साधना चिन्तन - पशु-मनुष्य-परमात्मा	श्री पुरुषोत्तम भटनागर, लखनऊ	25-27
18.	पूज्य विनोबा भावे के गीता प्रवचन	श्री प्यारे लाल भारतीय, कानपुर	28-31
19.	बोझ प्रभु के कन्धे पर	सन्त श्री विनोबा भावे जी	32
20.	श्री गुरु पूर्णिमा शिविर-2022 (9-14 जुलाई 2022) – विवरण तथा प्रवचन सार		33-36
21.	साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक का विवरण		37-38
22.	बाल-साधना-शिविर-2022 (2-7 जून 2022) – विवरण		38-39
23.	दानदाताओं की सूची		40-42
24.	श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		43
25.	वार्षिक शिविर-2022 कानपुर (15 से 18 अक्तूबर 2022) - सूचना		44
26.	वार्षिक शिविर-2022 बीसलपुर (17 से 20 नवम्बर 2022) - सूचना		44

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

सभी साधक भाई-बहनों को सम्पादक-मण्डल का प्रेम भरा राम-राम, अभिनन्दन!

स्वामी रामानन्द साधना-परिवार से 'हमारी साधना' नामक पत्रिका के प्रति वर्ष चार अंक प्रकाशित होते हैं और चारों अंकों में कोई न कोई विशेषता होती है। जनवरी-मार्च का अंक वर्ष का प्रथम अंक होता है, तो अप्रैल-जून के अंक में निर्वाण-दिवस का विवरण होता है। अक्तूबर-दिसम्बर अंक में गुरु महाराज का जन्म-दिवस होता है। किन्तु जुलाई-सितम्बर अंक प्रति वर्ष अति विशिष्ट होता है क्योंकि इस अवधि में गुरु-पूर्णिमा मनाई जाती है। यह त्यौहार केवल हमारे लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के शिष्यों के लिये विशिष्ट होता है जिसमें वे अपने-अपने गुरुओं की पूजा करते हैं। कोई भी साधक इस अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहता। हमारे यहाँ तो 36 घंटे का अखण्ड जाप भी रखा जाता है क्योंकि पूज्य गुरुदेव सामूहिक व अखण्ड मौन जाप को बहुत महत्त्व देते थे।

इस बार के इस गुरु-पूर्णिमा अंक से हमने एक नई परम्परा का शुभारम्भ करने का विचार किया है और वह है गुरु महाराज के जीवन से सम्बन्धित किसी छोटी अथवा बड़ी घटना की चर्चा करना। इससे साधकों की गुरु महाराज के प्रति जानकारी व श्रद्धा में वृद्धि होती रहेगी।

इस तिमाही की पत्रिका की अवधि में ही 15 अगस्त को पूरा देश स्वतन्त्रता दिवस मनाता है। इस वर्ष तो 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। सभी साधकों को इस अवसर पर शुभकामनायें।

साधना परिवार की नई कार्यकारिणी के गठन की सूचना पिछली पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। इस बार नई कार्यकारणी की पहली औपचारिक बैठक दिनांक 12-13 जुलाई 2022 को साधना धाम के प्रांगण में नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री विष्णु कुमार गोयल जी के नेतृत्व में सम्पन्न हुई जिसमें कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये जो पत्रिका के इस अंक में दिये गये हैं। हर्ष का विषय है कि गुरूदेव महाराज की तपस्थली दिगोली धाम के विकास के नये मार्ग प्रशस्त होते दिख रहे हैं जो हमारे अध्यक्ष श्री विष्णु कुमार गोयल जी के अनवरत प्रयास का फल है।

हम देख ही रहे हैं कि किस प्रकार गुरुदेव सूक्ष्म में रहकर हम पर कृपा वृष्टि कर रहे हैं जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था कि गुरु कहीं जाता नहीं है, वह शिष्यों का पथ-प्रदर्शन सूक्ष्म में भी करता रहता है।

ऐसे कृपालु गुरु के चरणों में कोटि-कोटि नमन!

पाठकों से नम्र निवेदन है कि पत्रिका के सम्पादन में जो त्रुटियाँ रह गई हों उनको क्षमा करते हुए सुधार के लिये सुझाव व अपनी मौलिक कृतियाँ (लेख, कवितायें व भजन) प्रेषित करते रहें।

पत्रिका में सुधार के लिये पाठकों के सुझावों का सदा ही स्वागत है।

आगामी अंक के लिये साधकगण कृपया अपने भजन, कवितायें व लेख इत्यादि सम्पादक अथवा उप-सम्पादक को ई-मेल या वाट्सएप के माध्यम से प्रेषित करें।

– सम्पादक मण्डल

गुरु जी मेरी तो सारी बहार आप से है

गुरु जी मेरी तो सारी बहार आप से है।
मैं बेकरार था मेरा करार आपसे है॥
गुरु जी मेरी ....

मैं ख़तावार बेशऊर बेलियाक़त हूँ,
मगर ये सच है कि मेरा वक़ार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

कहाँ ये आपका दर और कहाँ मेरी हस्ती,
ये हाज़िरी की अरज़, बार-बार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

मैं यकीं में हूँ ज़िन्दा कि आप मेरे हैं,
मेरी हयात का दारोमदार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

तुम्हारी याद में रातों को जाग रोते हैं,
मग़र मज़ा है कि ये यादगार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

भजन में स्वर तो मेरा है लफ़्ज भी मेरे है,
मगर इस दर्दे बयाँ में असर तो आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

कोई मशगूल है मेरी लगी बुझाने में,
हमें तो आपसे मतलब, ये प्यार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

तमाम उम्र कहाँ कौन साथ देता है,
तेरी सुहागिन हूँ, मेरा सुहाग आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

मेरी तो हस्ती ही क्या है मेरे गुरु महाराज,
जो मिल रहा है मुझे सारा प्यार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

चला क्यों आता हूँ दौड़ा मैं आपके दर पे,
प्रभु ने जोड़ दिये हैं जो तार आपसे हैं।
गुरु जी मेरी ....

बड़ी है नाम की दौलत, मिली इसी दर से,
करूँगी इसमें इजाफ़ा, ये वादा आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

तेरी ख़िदमत करूँ ता उम्र, आरजू है यही,
मेरी तो जीत इसी में, जो हार आपसे है।
गुरु जी मेरी ....

– दीपक दीक्षित, कानपुर

यदि नाथ का नाम दयानिधि है

यदि नाथ का नाम दयानिधि है,
तो दया भी करेंगे कभी न कभी।
जब तारनहार कहावत हैं,
भव पार करेंगे कभी न कभी॥
यदि नाथ का नाम ....

जो ईश भक्ति गुण गाते हैं,
मन वाँछित फल वो पाते है,
जब देव दयालु कृपा निधि हैं,
तो कृपा भी करेंगे कभी न कभी॥
यदि नाथ का नाम ....

हम पाप के करने वाले हैं,
वो पाप को हरने वाले हैं,
जब पाप अधिक बढ़ जायेंगे,
तो विनाश करेंगे कभी न कभी॥
यदि नाथ का नाम ....

अभिमान में हरि को भूल गया,
अज्ञान में उनसे दूर गया,
हम हैं अनाथ दीनानाथ हैं वो,
तो सनाथ करेंगे कभी न कभी॥
यदि नाथ का नाम ....

श्री गुरुवे नमः

हे सतगुरु मेरे दाता प्रभु राम मेरे दाता,
इक बार तो आ जाओ इक बार तो आ जाओ।
नैय्या डगमग डोले और खाये हिचकोले,
पतवार संभालो प्रभु इक बार तो आ जाओ।
मैं दीन भिखारी हूँ एक तेरा सहारा है,
यही आस मेरे गुरु जी इक बार तो आ जाओ।
तेरे नाम के सुमिरन से भव-बन्धन कट जायें,
तेरी कृपा प्रसाद मिले इक बार तो आ जाओ।
जन्मों की प्यासी हूँ अब शरण तिहारी हूँ,
तेरे चरणों का प्यार मिले इक बार तो आ जाओ।
हे सत गुरु मेरे दाता प्रभु राम मेरे दाता,
इक बार तो आ जाओ इक बार तो आ जाओ।
दिल की हर धड़कन में प्रभु आप ही बस जाओ,
मैं द्वार पड़ी तेरे मेरे मन में समा जाओ।
इक तेरे बिना भगवन कोई और ना दूजा है,
किसका मैं ध्यान करूँ कोई और नहीं भगवन।
नयनों में आन बसो प्रभु करुणा सागर हो,
तेरा नाम सुमिर कर मैं तुझमें ही खो जाऊँ।
दीन बन्धु कहाते हो प्रभु दया के सागर हो,
मझधार पड़ी नैय्या प्रभु पार लगा जाओ।
दिल की हर धड़कन में प्रभु आप ही बस जाओ,
मैं द्वार पड़ी तेरे मेरे मन में समा जाओ।

– श्रीमती कान्ति सिंह

विनय पत्रिका

(पद संख्या - 66)

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥1॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥2॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम-नाम ही सों अंच सब ही को काम रे॥3॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥4॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥5॥

भावार्थ – अरे पागल! राम जप, राम जप, राम जप। इस भयानक संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिये श्रीराम नाम ही अपनी नाव है। अर्थात् इस राम नाम रूपी नाव में बैठकर मनुष्य जब चाहे तभी पार उतर सकता है, क्योंकि यह मनुष्य के अधिकार में है॥1॥

इसी एक साधन के बल से सब ऋद्धि-सिद्धियों को साध ले, क्योंकि योग, संयम और समाधि आदि साधनों को कलिकाल रूपी रोग ने ग्रस लिया है॥2॥

भला हो, बुरा हो, उलटा हो, सीधा हो, अन्त में सबको एक राम नाम से ही काम पड़ेगा॥3॥

यह जगत् भ्रम से आकाश में फले-फूले दीखने वाले बगीचे के समान सर्वथा मिथ्या है, धुएँ के महलों की भाँति क्षण-क्षण में दीखने और मिटने वाले इन सांसारिक पदार्थों को देखकर तू भूल मत॥4॥

जो राम नाम को छोड़कर दूसरे का भरोसा करता है, हे तुलसीदास! वह उस मूर्ख के समान है, जो सामने परोसे हुए भोजन को छोड़कर एक-एक कौर के लिये कुत्ते की तरह घर-घर माँगता फिरता है॥5॥

गीता विमर्श

श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय

(गतांक से आगे)

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥7॥

'योग में लगा हुआ, विशुद्ध हुई आत्मा वाला, जिसने अपने को भली प्रकार जीत लिया है, जिसने इन्द्रियों पर वशीकार प्राप्त कर लिया है, सब भूतों से जिसकी आत्मा आत्मभूत हो गई है, ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी (कर्म से) लिपायमान नहीं होता'॥7॥

कर्मयोग की साधना और सिद्धि की चर्चा आगामी श्लोकों में हुई है। आखिर वह ब्रह्म-प्राप्ति की स्थिति कैसी है? और कर्मयोगी उसे क्योंकर लाभ कर लेता है?

कर्मयोग की सिद्धि है **'कुर्वन्नपि न लिप्यते'** 'कर्म करता हुआ भी (उससे) लिपायमान न हो।' इस अवस्था को नैष्कर्म्य कहते हैं। योगेश्वर कृष्ण स्वयं ऐसे सिद्ध कर्मयोगी थे। ईश्वर ऐसा ही कर्मयोगी है, जो इतनी रचना रचने पर भी कर्म-बन्धन से रहित रहता है।

वास्तव में इस अवस्था को लाभ किये बिना व्यक्ति प्रकृति के बन्धन से रहित हो ही कैसे सकता है? इस योग्यता के अभाव में जब व्यक्ति कर्म करेगा, बँध जायगा और किये बिना तो कोई रह ही नहीं सकता है। जीते जी तो वही मुक्त हो सकता है जिसने नैष्कर्म्य की स्थिति को लाभ किया है। गीता का योग तो इसी सम्भावना को आदर्श मानकर चलता है। 18वें अध्याय में इसी बात का परिचय भी दिया।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥18/56॥

'सभी काम करता हुआ भी मेरी कृपा से, 'मेरे आश्रित हुआ शाश्वत अव्ययपद को प्राप्त कर लेता है।'

यही वास्तव में परम संन्यास है जिसमें कर्म का वास्तविक संन्यास हो जाता है। कर्म देखने में तो होता है, परन्तु व्यक्ति लिपायमान नहीं होता। बाहर से तो कर्म होगा ही। जो भी बाह्यत्याग है, वह आंशिक ही हो सकता है, जैसे पहिले भी कहा जा चुका है। महत्त्व की बात तो लिपायमान न होना है सो योग के द्वारा सम्भव है।

श्लोक के बाकी तीन हिस्सों में 'यह कब होता है' इस प्रश्न का उत्तर है। यह स्थिति केवलमात्र मानसिक-धारणा से नहीं होती। भीतर कर्ता का ही रूपान्तर हो जाने पर ही सम्भव है कर्म से अछूते रह सकना। सो क्या बदलाव हो जाने पर कर्ता अकर्ता बन जाता है, यह बताते हैं।

योगयुक्त – योग में पूरी शक्ति से, अवधान से लगा हुआ। बैल को जैसे जुए में जोड़ा जाता है, ऐसे ही जो व्यक्ति अपने को कर्म की साधना में लगा देता है। अपना सारा बल लगाना होता है। जीवन की शक्तियों को इधर-उधर न बखेरकर अपने लक्ष्य की ओर चलने से ही योगयुक्त होता है व्यक्ति।

विशुद्धात्मा – विशुद्ध हो गया है आत्मा जिसका। विशुद्ध-विशेषकर शुद्ध। हमें गन्दी करती है निम्न प्रकृति-काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि। जिसकी निम्न प्रकृति का शोधन हो गया है वह विशुद्धात्मा है। जिसमें कामादि शान्त हो चुके हैं। आत्मा शब्द आपे के लिए प्रयुक्त हुआ है। वह जो आत्मतत्व है, जो मन बुद्धि से परे है, वह तो निर्मल है ही। उसके शोधन का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता।

विजितात्मा – भली प्रकार से जीत लिया है अपने को जिसने। 'आत्मा' यहाँ भी आपे के अर्थ में बरता गया है। वह जो अतीत तत्व है वह तो स्वयं सभी को जीतने वाला है उस पर विजय कैसी? जिस पर उस आत्मतत्त्व का अधिकार है, जो उसकी अभिव्यक्ति का साधन है, सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक, वह सभी 'आपा' कहलाता है। यह जो प्रकृति का निर्मित यन्त्र है, यह सभी आपा ही है।

इस पर विजय प्राप्त करने का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है मन, बुद्धि पर अधिकार उस अधिष्ठातृ चैतन्य के द्वारा। वैसे तो आपे में इन्द्रियों का समावेश भी है, परन्तु उनके विषय में तो अलग से कहा है – 'जितेन्द्रियः'।

मन पर अधिकार है, अपने भावमय-कोष पर पूरा अधिकार है। हम दुःख से और सुख से बहा लिए जाते हैं। उद्वेग होता है। राग-द्वेष की तरंगें हमारे मन को प्रभावित करती हैं। हम चाहने पर भी सम नहीं रह पाते। अपने मन पर काबू नहीं रख पाते। मन को चलायमान करने वाले जो वैषम्य हैं, उनके होने पर भी मन के चलायमान न होने पर, मन पर विजय पाई गई है, ऐसा कहा जा सकता है। इसी प्रकार बुद्धि पर भी अधिकार हो जाना चाहिए। बुद्धि को भी राग-द्वेष प्रभावित करते हैं। सुख-दुःख की तरंगें बुद्धि को चलायमान कर देती हैं। लोभ तथा मोह भी मति को भ्रष्ट कर देते हैं। जब तक ऐसी स्थिति है, तब तक नैष्कर्म्य की स्थिति असम्भव है। तब तक बन्धन होगा कर्म करने से।

चौथा लक्षण कहा – **जितेन्द्रियः,** जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है। इन्द्रियाँ विषयों से आकृष्ट होती हैं और मन तथा बुद्धि को भी भ्रष्ट कर देती हैं। स्थूलतम होने से इन्द्रियाँ बड़ी बली हैं, स्थूल विषयों के संयोग से इन्द्रियाँ बल को लाभ कर लेती हैं, वास्तव में इनके चलायमान होने से, मन तथा बुद्धि चलायमान होते हैं।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का यदि विवेचन किया जाये तो यही सार निकलता है। इन्द्रियों तथा मन के वशीकार से ही बुद्धि की स्थिरता हो सकती है। तभी कर्मयोग सम्भव है, तभी व्यक्ति योगयुक्त हो सकता है।

इस प्रकार की साधना करते हुए, निष्ठा से कर्म करते हुए, व्यक्ति का अन्तरात्मा निर्मल हो जाता है। निर्मल अन्तरात्मा में सत्य झलकने लगता है। व्यक्ति अपने को सभी के आत्मरूप में प्रतीत करने लगता है। अहंकार के अतिक्रम होते ही आत्मतत्त्व में स्थिति होती है। उसमें स्थिति के परिणामस्वरूप भेद की भीत गिर जाती है। आत्मतत्त्व तो सभी में समान रूप से है उसे अपना-आपा दूसरों का आपा लगता है।

सर्वभूतात्मभूतात्माः– जिसकी आत्मा सब भूतों से आत्म-भूत हो गई है। आत्मभूत-आत्मा हो गई है। इसी का वर्णन भगवान् अन्यत्र करते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6/29॥

'अपने में सभी भूतों को और सभी भूतों में अपने को देखता है...।' – यही अर्थ है।

जब इस प्रकार आन्तरिक-शोधन के परिणामस्वरूप यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तभी 'कुर्वन्नपि न लिप्यते' – 'कर्म करता हुआ लिपायमान नहीं होता' यह स्थिति आ सकेगी।

यह कर्मयोग की सिद्धावस्था है। यह एकदम से प्राप्त नहीं होती। साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। साधना तो हमारी निष्ठा पर निर्भर करती है। अतः वह साधन कहते हैं जिसके द्वारा इस स्थिति की प्राप्ति हो सकती है।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥8॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥9॥

'तत्त्ववेत्ता योगयुक्त मनुष्य ऐसा माने कि मैं कुछ नहीं करता हूँ,' देखता, सुनता, छूता, सूंघता, खाता, चलता, स्वप्न देखता हुआ, प्रलाप करता हुआ, त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, पलक खोलता हुआ और पलक बन्द करता हुआ भी, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय में बरत रही हैं, ऐसी धारणा रखते हैं'॥8-9॥

तत्त्ववेत्ता, योगयुक्त व्यक्ति, ऐसा माने, ऐसा विचार करे। यह साधना के लिए कहा है। सिद्धावस्था में तो मानना नहीं होता, धारणा रखनी नहीं होती है। यह तो उसकी सतत अनुभूति होती है। अतः ऐसा कहा है कि इस मार्ग पर चलने वाला इस प्रकार की धारणा बनाये। धारणा जो मन में हमेशा बनी रहे। मन की स्थिर-वृत्ति ही धारणा है। वह धारणा क्या हो? **'नैवं किंचित् करोमीति'** मैं कुछ नहीं करता हूँ। मैं आत्मसत्ता हूँ। वह तत्त्व तो मन बुद्धि से अतीत है। यह सांख्य का दृष्टि-कोण है। पुरुष अकर्ता है। प्रकृति में कर्म होता

है, गति होती है। बस, यही दृष्टिकोण दृढ़ करने का आदेश किया है।

इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय में बरतती हैं। इन्द्रियों के विषय – रूप आँख का विषय है, शब्द कान का, रस जिह्वा का, आदि आदि। आँख का देखना, उसका अपने विषय में विचरण है। इन्द्रिय प्रकृति का अंश है। रूप भी प्रकृति ही है। अतः प्रकृति का ही प्रकृति में खेल है। यही गुणों का गुणों में बरतना है।

आत्म-तत्त्व तो प्रकृति से न्यारा है। वह क्रिया प्रतिक्रिया से रहित है। वह इस सारे खेल का द्रष्टा है। यह दृष्टिकोण बन जाने से व्यक्ति कर्तृत्व से रहित हो जाता है। यह सांख्ययोग का स्थिर साक्षित्व है।

वास्तव में कर्मयोग का विशुद्ध सिद्धान्त, जिसकी चर्चा दूसरे तथा तीसरे अध्याय में हुई है, वह तो सांख्य-सिद्धान्त पर ही आश्रित है। चतुर्थ अध्याय में दृष्टिकोण को ऊँचा उठाया गया है। पुरुषोत्तम-योग जो गीता का मौलिक सिद्धान्त है, उस पर आश्रित है कर्म-ब्रह्मार्पणयोग, जिसमें कर्मों को प्रभु के चरणों में समर्पण का उपदेश है। यहाँ भगवान् ने सांख्य-सिद्धान्त के अनुकूल साधना कही है। साथ ही उस ऊँचे दृष्टिकोण की साधना भी कही है। देखिये नीचे दसवाँ श्लोक। भगवान् किसी दर्शन से नितान्त बंधे हों, ऐसा नहीं है।

क्या-क्या करता हुआ इस साक्षित्व का अभ्यास करे? सभी इन्द्रियों के व्यापारों की चर्चा की है। देखना, सुनना, छूना आदि। सोता हुआ भी इस साक्षि वृत्ति को, इस अकर्तृत्व धारणा को बनाए रखे। सोते में प्रायः विस्मृति होती है परन्तु साधक को तो सोते में भी सजग रहना होगा। यह सोना मन का खेल है। आत्मा सोता नहीं, केवल मन का लय होता है। यह प्रकृति का खेल है। श्वास तक लेने में यह धारणा रहे कि यह तो प्राणों की गतिमात्र है। आत्मा तो इनका साक्षि-मात्र है। 'मैं श्वास नहीं लेता, प्राण का आना-जाना होता है।'

प्रलाप करता हुआ भी व्यक्ति खो नहीं जाये। साक्षित्व को बनाये रखे।

दुःख में व्यक्ति बह जाता है। सारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। साक्षिभाव लुप्त हो जाया करता है। अतः उसका भी स्मरण किया। रोते में भी याद रहे कि आत्मा नहीं रोता। उसे क्या दुःख और क्या सुख? यह तो मन के धर्म हैं, जो कि प्रकृति है।

त्याग करते हुए भी न भूलना होगा और ग्रहण करते हुए भी न भूलना होगा। जो त्याग करता हुआ सोचता है मैं त्याग करता हूँ, वह त्याग के कर्म से लिपायमान होता है। उसके लिए त्याग बन्धन है। वह प्रकृति के धर्म को अपने पर आरोपित करता है, अतः कर्मपाश में बँध रहा है। ग्रहण करने में जो ग्रहण करने वाला बन जाता है, वह भी पकड़ में आ जाता है प्रकृति की। ग्रहण करना और त्याग करना ये प्रकृतिगत चेष्टायें हैं। आत्मा न छोड़ता है और न पकड़ता है। यदि यह रहस्य समझ में आ जाये तो न कुछ पकड़ने को ही रहता है और न छोड़ने को। त्याग का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। हिंसा-अहिंसा, हानि-लाभ और राग-द्वेष आदि सभी तो प्रकृति ही में हैं। क्या लें और क्या न लें? इसी बात को लेकर तो योगवासिष्ठ सुनाने पर जब श्रीराम गृह-त्याग की सोचने लगे, तो वसिष्ठ जी ने कहा था, 'कैसा त्याग? तुम तो अकर्ता हो। क्योंकर त्याग? किसका त्याग?

इससे स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहार में सांख्य-सिद्धान्त हमें ठीक उसी जगह पहुँचा देता है, जहाँ भक्ति का योग ले जाता है। जहाँ हैं वही रहना होगा। उसी स्थिति को स्वीकार करना होगा। बाह्य-त्याग तो निरर्थक है?

यह विवेक – कर्तृत्वाकर्तृत्व-विवेक कितना व्याप्त हो जाए जीवन में, इसका परिचय देते हैं, **'उन्मिषन्निमिषन्नपि'** – 'पलक उठाते और डालते हुए भी' 'न भूले कि मैं कुछ नहीं करता' यह प्रकृति ही करती है।

यह साक्षित्व की सांख्य-आश्रित विवेक-मूलक साधना है। जो सांख्य-सिद्धान्त के अनुयायी हैं, वे इस प्रकार साधन करते हुए नैष्कर्म्य को लाभ कर सकते हैं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥10॥

'ब्रह्म में कर्मों को रखकर (सौंपकर), आसक्ति को छोड़कर जो व्यक्ति कर्म करता है, वह पाप से लिपायमान नहीं होता। जैसे कमल का पत्ता जल से लिपायमान नहीं होता'॥10॥

ज्ञान के मार्ग में कर्म के समर्पण का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। वहाँ कर्म के कर्तृत्व का ही अभाव है फिर कर्म का समर्पण कैसा? परमसत्ता भी वास्तव में निष्क्रिय है, वहाँ समर्पण की स्वीकृति कैसी?

परन्तु, भक्त का ब्रह्म तो पुरुषोत्तम है। वह सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता है। वह ईश्वर है जो सबके हृदय में बैठकर सभी नियमन करता है। वह सभी का मित्र है, परम-हितू है। वह यज्ञेश्वर है और लोक-महेश्वर है ऐसा ब्रह्म तो हमारे समर्पण को स्वीकार कर सकता है। वह कृपा भी करता है, हमारी पुकार को भी सुनता है। ऐसे परमेश्वर का पूजन हो सकता है और उसे इष्ट बनाया जा सकता है। ऐसे ही प्रभु गीता का उपदेश दे रहे थे अर्जुन को और अपने को धीरे-धीरे प्रकट करते जा रहे थे अर्जुन के लिए।

'कर्मों को ब्रह्म में भली प्रकार से रखकर' भगवान् में कर्मों को भली प्रकार से छोड़ना क्या होता है? जिससे लेशमात्र भी हमारे साथ लगाव न रह जाए। कर्मों को पूरी तरह से उसी का समझना, उसी के लिए ही करना। कुछ भी करने में न सुख की लालसा रखनी और न फल की आकांक्षा। ऐसा करने से कर्म भगवान् में रखा जाता है।

कर्म को आसक्ति छोड़कर करना होगा। आसक्ति ही बन्धन का कारण होती है। वह व्यक्ति को बांध देती है कर्म के साथ, कर्म के आधार तथा फल के साथ। जितना हम आसक्ति रहित होते हैं, उतना ही प्रकृति के बन्धन से रहित हो जाते हैं। कर्म नहीं बांधता, आसक्ति बांधती है, यह स्मरण रखना होगा। अतः अनासक्त होकर कर्म करने वाला बन्धन-रहित रहता है।

अनासक्त होने का सुगम उपाय है कर्मों का भगवान् में आधान कर देना। अपना समझने से ही तो लगाव होता है। भगवान् का समझेंगे तो अपना होगा ही नहीं। फिर लगाव ही कैसा? भक्त तो इसी सीधे मार्ग का अनुसरण करता है। **'न होगा बांस न बजेगी बांसुरी'**।

जो व्यक्ति इस प्रकार से कर्म करता है, वह पाप से लिपायमान नहीं होता, पाप नहीं लगता उसे। तो क्या पुण्य लगता है? न पाप लगता है, न पुण्य लगता है। वास्तव में संस्कार ही नहीं बनता, तो केवल पाप ही क्यों कहा? अर्जुन के सामने तो पाप के लगने की ही समस्या थी। उसी से डर रहा था। अतः कहा पाप नहीं लगता। जैसे मैं कहता हूँ वैसे युद्ध कर, तो पाप नहीं लगेगा। युद्ध अपने लिए मत कर, मेरा कार्य समझ के कर। मेरे आदेश का पालन समझ कर युद्ध कर। जय-पराजय तेरे सोचने की बात ही नहीं रहती। यदि इस प्रकार मनोवृत्ति बना लेगा, तो इस कर्म के बन्धन से बचा रहेगा।

कर्म करते हुए अछूता रहने के लिए एक उदाहरण दिया है। जल में रहता है कमल का पत्ता, परन्तु गीला नहीं होता। उस पर पानी पड़ता है, परन्तु उसे बिना भिगोये ही ढुलक जाता है। ऐसे ही भगवान् के लिए कर्म करने वाले की दशा होती है।

जो भगवान् के लिए कर्म करते हैं, उन्हें भी आसक्ति घेरने की चेष्टा करती है। 'यह कर्म तो मेरे द्वारा ही होना चाहिये और यह मेरे द्वारा नहीं होना चाहिये', ऐसी धारणा मोह मूलक होती है। प्राप्त कर्म को ही उसका निर्देश समझना है। 'मैं बहुत बड़ा हूँ इसलिए विशेष कर्म का निर्देश करेंगे भगवान्, मेरे द्वारा कोई बड़ा काम करवायेंगे,' ऐसे विचार अहंकार की परिवृद्धि के कारण होते हैं। कर्ममात्र को ही प्रभु में रख देना है। वह सभी कुछ स्वीकार करता है। समर्पण के लिए विशेष कर्मों की आवश्यकता नहीं रहती।

यह गीता के योग का मौलिक सिद्धान्त है। यही कर्मयोग की नैष्कर्म्य सिद्धि है। करते हुए व्यक्ति कर्म से अलिपायमान रह सकता है। पहिले भी कहा जा चुका है, यह अवस्था कर्म करते-करते ही साधक को प्राप्त हो जाती है।

(क्रमशः)

पत्र-पीयूष

(गतांक से आगे)

अपने में प्रभु अर्पित होने का भाव - अपनी रुचियों को, इच्छाओं को छोड़ने का भाव पैदा करना चाहिये। जैसे प्रभु रखना चाहे उसी में प्रसन्न रहने का यत्न करना चाहिये। उस स्वामी का विधान हमारे लिये सदैव अच्छा ही होता है। (पत्र 31)

❖ ❖ ❖

गृह कार्य को समुचित रीति से निभाते हुए अपनी तार को जोड़े रखने का यत्न कीजियेगा। जितना कुछ बन पड़े उसके लिये तो प्रभु का धन्यवाद और अधिक के लिये कामना करनी है। इसी प्रकार से अधिकाधिक कृपा का अवतरण होता है। (पत्र 33)

❖ ❖ ❖

उस महाशक्ति के हाथों में अपने को समर्पित करियेगा। जिस अनुभूति की आवश्यकता होगी, जिस प्रतीति से आपका मंगल होगा सो आपको होती चली जायेगी। (पत्र 33)

❖ ❖ ❖

सुख और शान्ति तो बहुत कुछ हमारे पर ही निर्भर करती है। इच्छा, कामना, राग तथा द्वेष दु:ख को लाते हैं। त्याग, सेवा तथा प्रीति और नम्रता व्यक्ति में सुख का संचार करते हैं। भगवान् के समीप होने से शान्ति आती है। उनसे दूर होने से उनके और अपने बीच में संसार के पदार्थों को रखने से व्यक्ति को व्याकुलता होती है। प्रभु के लिए लगन पैदा करियेगा। वह लगावट जो पुत्र पौत्र तथा धन-धान्य में है, यदि प्रभु में हो तो शान्ति झट से आने लग जायेगी। प्रभु नाम को भीतर गुंजा देना चाहिये, उसका रटन रहा करे रात-दिन, फिर आनन्द ही आनन्द हो जायेगा। (पत्र 36)

❖ ❖ ❖

व्यक्ति धन से बड़ा नहीं होता और न ही मान से बड़ा होता है। प्राय: इन दोनों से वह गड्ढे में गिरता है। बड़ा होता है भगवान के समीप होने से, निर्मल मन होने से, दूसरों की सेवा करने से। यदि हम प्रभु का होना चाहते हैं तो अपने को मिटा देना होगा। (पत्र 36)

❖ ❖ ❖

अटूट निश्चय, भगवान के नाम में दृढ़ लगन तथा तदनुकूल प्रयास - इस साधनत्रय से व्यक्ति परमधाम का, अपार शान्ति का लाभ करता है। (पत्र 38)

❖ ❖ ❖

साक्षी बनकर मन की इस लीला को देखने का यत्न करियेगा। ईश्वर भजन में मन लगा रहे तो ठीक ही है। जब सांसारिकता की ओर भागे तो इसे रोकने का यत्न न कीजियेगा। खूब भागने दीजिये, घबराइयेगा

भी नहीं। अनासक्त भाव से तमाशे को देखियेगा। खूब दौड़-दौड़ कर धीरे-धीरे मन अपने में आ जायेगा और भटकना बीत जायेगा, आपकी आज्ञा का पालन करने लगेगा। बलात्कार करने से मन के प्रसुप्त रोग दबकर अधिक खराबी पैदा करते हैं। बुद्धि की समता को बनाये रखने का यत्न कीजियेगा। यही एकमात्र उपाय है आन्तरिक शुद्धि का। छिपी हुई आसक्तियों के कारण ही यह लीला होती है। धीरे धीरे वह शान्त हो जायेंगी और मन अपने परमपद में, भगवान में लीन होने लग जायेगा। (पत्र 38)

❖ ❖ ❖

साधक की सबसे बड़ी आवश्यकता है लगन। उसका जीवन, जीवन के प्रत्येक कृत्य, श्रीराम के लिए ही हों। स्वप्न में भी उसे अपने स्वकीय लक्ष्य की स्मृति न हो। (पत्र 39)

❖ ❖ ❖

भजन के समय अपने शरीर को शिथिल करना सीखना चाहिये। कमर भी यदि झुक जावे तो डर वाली बात नहीं। इसी प्रकार मन तथा मानसिक धारणाओं को शिथिल करना सीखना चाहिए। आन्तरिक प्रेरणा मुख्य होती चली जानी चाहिये। इसी में श्रीराम की वाणी का बोध प्राप्त होने लगता है। (पत्र 39)

❖ ❖ ❖

आप जितना अधिक जाप करेंगे उतना ही लाभ होगा। चलते फिरते स्मरण कीजियेगा। (पत्र 40)

❖ ❖ ❖

भजन करने से साधक की आत्मशक्ति जग जाती है। भागवती शक्ति का अवतरण भी होता है। इस कारण शरीर में भिन्न-भिन्न नाड़ियों में सूक्ष्म शरीर में प्राण की गति होने लगती है। उससे शरीर का मन तथा बुद्धि का शोधन होने लगता है। धीरे-धीरे भीतर स्थिरता तथा शान्ति होने लगती है। दिव्य चेतना का आविर्भाव होने लगता है। जब शक्ति मूलाधार से ऊपर को जाती हो तो विशेष प्रतीति होती है। इस प्रकार की गतियाँ सिर में भी होती हैं। यह सब शुभ लक्षण हैं। शरीर को शिथिल कर देना चाहिये। आसन में जो स्वभावत: परिवर्तन होने को हों उसे रोकना नहीं चाहिये। (पत्र 41)

❖ ❖ ❖

व्यायाम होना चाहिए। पूजादि के उपरान्त भी प्रात: भ्रमण के लिये जाया जा सकता है। जीवन को नियमित करना ही इस विषय में एक इलाज होता है। ऐसा करने से काफ़ी समय, जिसका हम दुरुपयोग करते हैं, काम में आ सकता है। (पत्र 42)

❖ ❖ ❖

अपने जीवन में प्रत्येक कृत्य जो आप करते हैं उसकी अपने पर जिम्मेदारी प्रतीत करने का यत्न कीजियेगा। वह भाव जो हमारे हृदय में उठते हैं उन पर नज़र रखनी आवश्यक है और अपनी वाणी तथा कर्मों पर भी। श्रीराम-भक्त का जीवन सेवा से, परहित से परिपूर्ण होता है। (पत्र 42)

❖ ❖ ❖

Letters to Seekers

Letter No. 5 : Shri Ram : Almora, 25.06.1944

My dear .....,

Yours to hand for which many thanks. I hope that you are following my instructions about studies and meditation in full. I should like you to proceed one step ahead now. Upto the present you have read Aurobindo's philosophical literature and now I would like you to turn to the practical side of it. I should suggest 'Meditations of the Mother' as the first thing for study. Let it not be an objective study. The book should be given a thorough mastication and it should lead to thorough assimilation. Read less, meditate more upon it so that it no longer remains meditation of the mother. I have every hope that you will like them so much that all this will come spontaneously.

The book fell into my hands during my first visit to Agra in December. A glance through revealed that I myself had for years together meditated on the same lines. The book is full of sincere thought which is useful for all sadhaks of the path we follow.

This you may do whenever you find yourself in the mood for it, but I should certainly like such thoughts to be your bed time companions at least. The book will indicate the lines, you will catch the rhythm.

As to the name, carry it on in the morning and evening in formal sittings and otherwise, when you are not meditating. The two are complementary. It is not enough to know that the name has transformed so many I know of myself and I know of quite a good number whom I have the privilege to serve in the spiritual field. A tree is known by the fruits thereof. It will help to awaken within you the mighty reservoir of strength and put you in touch with the Divine. So it has done in my case and so it does in the case of many whom I know. When I set out on the path, I had no more testimony than of the above type. Yes, I did waver once, but the Lord's grace brought me back and with a renewed faith of which the intensity can only be imagined, I took a plunge, and closed the door – 'For me there is no way but this' and Lo! gradually the curtains were lifted and His Grace descended! I then did not know the why of it.

My meditations were always of the Aurobindo type even when I did not practically know him – through his writings.

The suggestion about meditation gives the intellect, heart and will, some work to do. In the course of progress, a stage comes when the name and meditation both cease for ever.

I always tried to keep an open mind and so even now. My views are not fixed for ever. If I realise a higher truth, the present convictions will fall instantaneously.

I shall also propose that you take living interest in the business and household duties and the welfare of its members willingly, as an offering at His feet. Only let this fact be remembered. This is necessary for your spiritual evolution.

Relax yourself. Have faith that all shall come off well. Faith will spontaneously lead to relaxation. It will strengthen your nerves. You are in His hands and His Grace is upon you.

It will gradually transform you. All the dross shall be cleared away in course of time. Have faith and impatience will leave you. The Divine is our caretaker. Our blunders are also the necessary steps of the path. Saints would not have been Saints but for the blunders. Have faith in Him and suffer your ills pleasantly. Try not to suppress them. True Spiritual Sadhana is nature cure. It rests upon our faith in the Divine plan. All tuning forks are good but we use the one which is with us, which some one has magnetised for our sake: so with name.

I have written more than enough.

As to the Gita I shall give a few hints only, more in my next. (Chapt. III) Verse 32: It lays before us the negative consequences. Surrender of actions is the preparatory step for surrender of self and mergence. Hence the consequences. True knowledge puts us in harmony with the Divine and hence beyond reactions. नष्टान् (Nashtaan) – Lost (to themselves), to the Divine i.e. lost – fallen from the way.

This is not an eternal condemnation. The self motivated action hits back and gradually leads to the awakening of the consciousness.

Why should we surrender our actions to Him? Who is He? We do and we shall have fruits.

The way to get beyond reactions while acting is to put oneself in tune with the Divine Will. Surrender of actions is to realise that HE is working through you. You become now an actor. So about the doing of sadhna. At a particular stage, the sadhak actually realises that it is the Divine who is doing sadhna in him. Then he is practically free.

Verse 33: It deals with the futility of suppression and aggression as regards individual make-up is concerned.

Action is the expression of what we are. Every act in all the planes bears the impressions of our individuality. This may not be so much visible on the gross plane but it is quite evident on the subtler planes. There is a man in whom desire is strong. His most unselfish (seemingly) act will bear that impression.

We foolishly think that we shall change others by words and precepts. Even our words are interpreted in the light of the personality that has been developed and the experience behind it. Restraint means one thing to one and another to some one else. Look to yourself, could you change your habits instantaneously. We have subtle bodies and they are accustomed to vibrate in a particular way. To change ourselves is to change our habits, to replace the matter of those by different matter – this is the occult side of it.

It does not mean that change can not be affected. It can be, but by changing प्रकृति not by forcing the expression just as in nature cure, cure the body, not the symptoms.

For that desire must come from within. Help will come from without. Faith in self and faith in Divine – Patient effort – all these go to change prakriti.

That will do for the present.

With sincere regards,

Yours in the Lord,
Ramanand

गुरु महाराज के जीवन से सम्बन्धित घटना की चर्चा

हाई स्कूल के बाद एक बार वे अपने गाँव आये तो क्या देखते हैं कि मलेरिया के कारण सारे गाँव का बुरा हाल है। कोई घर नहीं था और घर में कोई व्यक्ति न था जो इस रोग से पीड़ित नहीं, न कोई दवा देने वाला, न तीमारदारी करने वाला, ऐसे समय शिशु जी ने ग्रामीण जनता की अनुपम सेवा की। अपने छोटे से झोले में आवश्यक दवाईयाँ लेकर वे घर-घर घूमते, अपने हाथों से सेवा करते तथा रोगियों को आश्वासन देते। अपने हृदय की करुणा से रोगियों का दुःख दूर करने लगे और चारों ओर उनकी इस निःस्वार्थ सेवा का धवल यश फैल गया। जाने कितनों के स्नेहपात्र और आदरपात्र बन गये। इन सब गुणों का श्रवण करके चाचा हुकूमतराय जी, जो स्वयं भी आध्यात्मिक थे और कहा करते थे कि इस पथ में यह मेरे से अनेक गुणा अधिक है, ने अपनी वसीयत में दो हजार रुपया अथवा जितना भी पढ़ाई पर खर्च हो आगे की शिक्षा के निमित्त नियत किया। लेकिन इस की नौबत न आई। क्योंकि शिशु जी को सदा ही छात्रवृत्ति मिलती रही। खाने-कपड़े का खर्च तो घर से चलता ही था उनकी आवश्यकतायें इतनी कम थीं कि उन्हें अतिरिक्त पैसे की कोई आवश्यकता न थी। धन के प्रति ज़रा भी लगाव उनमें न था। इस प्रकार अपने विद्यार्थी जीवन में अपना विकास करते हुए, दूसरों को अपने निष्कपट प्रेम-रस तथा सेवा-दान से परिपूरित करते हुए आगे बढ़ने लगे।

(स्वामी रामानन्द चरित सुधा से)

भक्त पुरुषोत्तम

गंगा जी के पवित्र तट पर एक गाँव में पुरुषोत्तम नामक एक ब्राह्मण रहते थे। माता-पिता छोटी उम्र में मर गये थे, दादी ने उनको पाला था। बुढ़िया दादी का भगवान् में सरल विश्वास था और वह दिन-रात मुँह से राम-राम रटती रहती थी। दादी के शुभ संग से पुरुषोत्तम को भी राम-नाम रटने की बान पड़ गयी। राम-नाम में बड़ी अनोखी मिठास है, परन्तु इस मिठास का अनुभव होता है रुचि होने पर ही। लेकिन यह रुचि भी होती है नाम के सतत सेवन से ही। पुरुषोत्तम जी तो बचपन से ही राम-नाम रटने लगे थे। अतएव इनकी नाम में रुचि हो गयी और रुचि होने पर इन्हें मिठास भी मिल ही गयी। राम-नाम का यह रस इतना मधुर है कि इसके एक बार भी चख लेने पर फिर इसके सामने सारे रस नीरस और फीके हो जाते हैं।

श्री तुलसीदास जी ने गाया है –

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस षटरस रस अनरस
है जाते सब सीठे॥

'यदि मुझे राम मीठे लगे होते तो नव रस (शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शान्त – साहित्य के ये नौ रस) और छः रस (कटु, तीक्ष्ण, मधुर, कषाय, अम्ल और लवण – भोजन के ये छः रस) नीरस और फीके पड़ जाते।' पुरुषोत्तम इस रस का स्वाद चख चुके थे, इसलिये उन्हें अब जगत् के किसी रस में रति नहीं रह गयी। दादी ने दो-एक बार कहा, पर पुरुषोत्तम ने विवाह नहीं किया। समय पर दादी का देहान्त हो गया। फिर तो पुरुषोत्तम सर्वथा स्वतन्त्र होकर राम भजन में लग गये। घर में कुछ जमीन थी, उसी में खेती करते। स्वयं परिश्रम करते और जो अनाज पैदा होता, उसी से जीवन निर्वाह करते। उस अनाज में से कुछ बचता, उसको बेचकर कपड़ा, तेल, मसाला, बैल, हल आदि सामान ले आते। उनका नियम था – न माँगकर खाना, न बिना परिश्रम का खाना, न पड़े-पड़े खाना, न किसी से कभी कुछ लेना। कम-से-कम आवश्यकता और उसे अपने परिश्रम से ही पूरा करना। पुरुषोत्तम के दिन बड़े ही सुख से कटते थे। वे जब खेत में परिश्रम करते, तब भी उनके मुँह से राम का नाम और मन में राम का ध्यान रहता। उनका परिश्रम भी सारा अपने इष्टदेव राम की पूजा के लिये ही होता।

घर में भगवान् श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर प्राचीन विग्रह था। बड़े प्रेम, चाव, भाव और विधि से पुरुषोत्तम जी भगवान् की पूजा करते। स्वयं रसोई बनाकर भगवान् का भोग लगाते और उसी प्रसाद से अपने अन्दर रहने वाले भगवान् की तृप्ति करते।

गीता के अध्याय 15 के श्लोक 14 में भगवान् ने कहा है –

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

'मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।'

बाहर भी भगवान् को भोग लगाना और भीतर भी भगवान् को ही। भक्त जो कुछ करता है, बाहर-भीतर सब भगवान् के लिये ही करता है। वह अपना अस्तित्व भी भगवान् के ही आधार पर मानता है। स्वतन्त्र न वह कुछ है, न उसका अपना कोई अलग कार्य है। उसके सारे कार्य भगवान् के

कार्य हैं; क्योंकि वह सर्वदा और सर्वथा भगवान् का ही है। पुरुषोत्तम भक्त के सारे कार्य इसी भाव से सम्पन्न होते। निरन्तर भगवान् का अखण्ड स्मरण और भगवान् के लिये ही मन-वाणी-शरीर की प्रत्येक क्षण की प्रत्येक क्रिया। यही तो भगवदीय जीवन है।

ज्यों-ज्यों भजन बढ़ता गया, त्यों-ही-त्यों भाव में प्रगाढ़ता आती गयी। लगभग बारह वर्ष की साधना से पुरुषोत्तम का सब कुछ राममय हो गया। अब उनकी खेती-बारी छूट गयी। खेती-बारी कहाँ से होती – गाढ़ समाधि में भोजन-पान का भी कोई पता नहीं रह गया। श्रीमद्भागवत में कथित श्रीभगवान् की निम्नलिखित उक्ति मानो उनमें पूर्णतया चरितार्थ हो गयी।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(11/14/24)

भगवान् श्रीराम का नाम-गान करते हुए उनकी वाणी गद्गद हो जाती। चित्त द्रवित होकर बहने लगता। एक क्षण के लिये भी रोना बन्द नहीं होता। कभी वे खिलखिलाकर हँसने लगते, कभी लाज छोड़कर उच्च स्वर से गाने लगते और कभी उन्मत्त होकर नाचने लगते। भक्ति रस में सराबोर हुए भक्त पुरुषोत्तम जी की इस स्थिति में जो कोई भी उनके पास आता, उनकी इस दिव्य भावमयी स्थिति के दर्शन करता, वही पवित्र-हृदय होकर भावोन्मत्त हो जाता। पुरुषोत्तम जी की राम धुन दूर-दूर तक पहुँची। घर-घर और गाँव-गाँव में लोग राम-नाम का मधुर कीर्तन करने लगे। पुरुषोत्तम जी के दर्शनार्थ दूर-दूर से लोग आने लगे। पर उनकी भाव-समाधि प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती गयी। वे सदा-सर्वदा बाह्य ज्ञान शून्य रहते और उपर्युक्त भावों का विलक्षण प्रकाश उनमें निरन्तर होता रहता। इस दशा में वे पाँच वर्ष तक रहे। एक दिन इसी दशा में भगवान् श्रीराम के विग्रह के सामने नाचते-नाचते ही उन्होंने तीन बार बड़े जोर से राम-नाम का घोष किया और उसी क्षण उनका ब्रह्मरन्ध्र फट गया। शरीर भगवान् के श्रीविग्रह के चरणों पर गिर पड़ा। उस समय भी उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज छाया था और मानो उनके रोम-रोम से राम ध्वनि हो रही थी।

– विरक्त रामभक्त श्री बनादास जी

ताना

लोग ताना मारते हैं, उन तानों से दिल जलने लग जाता है। यह सत्य है। पर क्या हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि लोग हमारा दिल जलाना चाहते हैं? क्या हमारा दु:खी होना उन्हें अच्छा लगता है? अनेक बार तो उल्टा बोलने का स्वभाव ही हो जाता है। जिसमें यह तनिक भी विचार नहीं रहता कि हमारे कहे का दूसरों पर क्या प्रभाव होगा और बहुत बार तो हमें स्वयं भी पता नहीं रहता कि हमने क्या कहा है? हम यह सोच भी नहीं पाते कि हमने कोई चुभने वाली बात कही है या नहीं।

ऐसा होना आश्चर्यजनक नहीं। मनुष्य मनुष्य ही तो है, कितना है उसका ज्ञान और अनुभव? कितनी है उसमें अभी तक प्रेम की शक्ति जो दूसरों के दिलों से अपने को एक कर सके। हमसे भी यह गलती हो जाती है, हमें पता नहीं चलता। दूसरों से भी हो जाती है उनको पता नहीं रहता।

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

आध्यात्मिक विकास में कबीर की सहभागिता

अध्यात्म को आत्मसात करने के लिए आवश्यक है कि निम्न भावों को सन्तों की अनुभूतियों के प्रिज़्म से इन्द्रधनुषी छटा का आनन्द लें।

संकल्प और विकल्पों का जनक है मन। अपरा (जड़) स्वभाव का होने पर भी समस्त समस्याओं के मूल में यही विद्यमान है। क्या कोई उपाय है जो सहजता से इन संकल्प और विकल्पों के विकारों का शमन कर सके? दमन तो किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। निम्न उपायों के माध्यम से मन को नियन्त्रित किया जा सकता है –

1. प्रभु राम के नाम का सतत् स्मरण जिससे माँ महाशक्ति के रूप में साधक के तन मन में व्याप्त होकर शोधन प्रारम्भ कर देगी जिससे संस्कारों का क्षरण स्वत: ही होने लगेगा।
2. सिमरन के साथ ही समर्पण की प्रक्रिया भी सक्रिय होने लगती है जिससे शुचिता का पदार्पण होने लगता है। **'राम नाम शुचि रुचि सहज स्वभाव रे'** विनय पत्रिका की यह घोषणा सदैव ध्यान रखनी चाहिए। प्रथम, राम नाम के प्रति पावन रुचि हो जिससे प्रभु का प्रेम पसारा लेने लगे। सहज भाव से नाम लेने से शंकरजी जैसी अखण्ड समाधि भी सिद्ध हो सकती है। मानस की ये पंक्तियाँ विचारणीय हैं –

   शंकर सहज स्वरूप सँभारा।
   लागि समाधि अखंड अपारा॥
3. आने वाले विचारों से संघर्ष न करके शरीर को ढीला छोड़ देने से मन का प्रभाव निष्प्रभावी किया जा सकता है और मन की उछल-कूद स्वत: शनै:-शनै: कम होने लगती है, मन की एकाग्रता बढ़ जाती है। साधना की सिद्धि के लिये मन की एकाग्रता अपरिहार्य है।
4. विवेक की साधना से समस्त दोषों का परिमार्जन होकर जीवन सहज और सुगम हो जाता है। मानस की निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

   उघरहिं विमल विलोचन ही के।
   मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

   परिणाम यह होगा कि –

   सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
   गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

अस्तु, साधक को जब यह अहसास होने लगता है कि –

मेरा मन, हे प्रभु! आपसे ऐसा कभी नहीं लगा जैसा कि यह कपट छोड़कर, स्वभाव से ही निरन्तर विषयों में ही लगा रहता है। जब मन विषय त्याग प्रभु से अनुराग करता है तब होता है प्रभु का भजन, तब होता है प्रभु आराधन, तब होता है मन का पावन परिमार्जन, तब होता है ज्ञानार्जन और तब होता है प्रभु का दिशा बोधन जिससे दिव्य प्रभु की दयालुता की निर्झर वृष्टि होने लगती है और समस्त कलुषों से साधक को मुक्ति मिल जाती है। यही है क्रान्तिकारी आध्यात्मिक विकास यात्रा प्रभु मिलन की।

गीताकार अध्यात्म को परिभाषित करते हुए घोषणा करता है कि – **'स्वभावो अध्यात्म उच्यते'** आत्मा के विषय में – आत्म तत्व से सम्बन्ध रखने वाला पुरुषोत्तम का भाव अध्यात्म है। वह अनन्त सत्ता जो आत्मा के रूप में इस देह की अधिष्ठातृ बनकर खेल करती है, वह अध्यात्म कहलाता है। वही स्वभाव है। उस आत्मरूप में पुरुषोत्तम का प्रकट हुआ जो भाव है, उसी के कारण तो कर्तृत्व

है, और कर्मफल का संयोग है। यह सारा खेल तो व्यष्टि में पुरुषोत्तम के प्रकट होने के कारण है। यही स्वभाव (अध्यात्म) का बरतना है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है और जानना महत्वपूर्ण है कि अध्यात्म में प्रकट जो पुरुषोत्तम अनन्त है वह सगुण भी है, निर्गुण भी। जो पहाड़ को उत्तर से देखता है, वह भी पहाड़ देखता है, और जो दक्षिण से देखता है, वह भी पहाड़ देखता है। जो मनुष्य को आगे से देखता है और जो पीछे से, वह भी उसे मनुष्य ही देखता है। इसी प्रकार से उस अनन्त-भाव सम्पन्न पुरुषोत्तम के लिए कहा जा सकता है। जो निर्गुण है वही तो सगुण है। जो जिसे भावे वह उसका अनुसरण करे। यही है क्रान्तिकारी आध्यात्मिक विकास की परिकल्पना जिसमें परमानन्द की अखण्ड अनुभूति, आनन्द योग की सहज सन्तुष्टि, सहज तृप्ति और सहज प्रीति के रूप में अध्यात्मपरक साधक को सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

कबीर जो सन्तों के शिरोमणि हैं, उनके अनुसार अध्यात्म का अर्थ है कि एक परमात्मा ही कण-कण में व्याप्त है और कह उठते हैं –

तेरा साहिब है घट माहीं,
बाहर नैना क्यों खोलै।
कहत कबीर सुनो भई साधो,
साहिब मिल गये तिल ओले॥

यह साहिब जो अनन्त पुरुषोत्तम हैं, जो अध्यात्म की प्रतिमूर्ति हैं वह निरभिमानिता के परिहार से ही दृष्टिगत होते हैं। यही है वस्तुतः साहिब का तिल ओले मिलना जहाँ साधक साक्षी भाव से परमात्मा को हर जगह व्याप्त देखता है।

एक अन्य जगह कबीर जी कहते हैं कि –

घूँघट के पट खोल री, तो को पिया मिलेंगे।

यह घूँघट वस्तुतः है अहमन्यता का, देह-भाव का। जिस क्षण यह भाव मिट जाता है तब परमप्रिय प्रियतम के मिलन का सुयोग आनन्द योग के रूप में रूपान्तरित होकर स्वतः निःसृत होने लगता है।

कबीर की वाणी अध्यात्म की ज्योति प्रज्ज्वलित करने में समर्थ है क्योंकि 'सबूरी' ही है जहाँ वहीं है परमात्मा। बस परम प्रेम की जीवन्त साधना की कसौटी पर खरा उतरना होगा।

प्रेमनगर में रहनि हमारी,
भलि बनि आई सबूरी में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिलै सबूरी में॥

कबीर के लिए राम, जो सगुण भी है निर्गुण भी है, असली अध्यात्म की सहज अनुभूति है –

कहत कबीरा राम ना जा मुख, ता मुख धूल भरी।

अर्थात् जिसने अपने आप को अध्यात्म के अन्तर्निहित प्रकाश पुंज से संस्कारित नहीं किया है वह **'स्वान्तसुखाय'** के अलबेले भाव से वंचित है। तृष्णा के तिरोहित होने पर मूल (अध्यात्म) को हृदयंगम किया जा सकता है। इसीलिए चेतावनी भरे भाव में उलाहना देते हैं कि –

बीत गये दिन भजन बिना रे।
लाहे कारन मूल (अध्यात्म) गँवायो,
अजहूँ न गइ मन की तृसना रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये सन्त जना रे॥

यही हैं वे सन्त जो पुनीत अध्यात्म के पुरोधा हैं जो सर्वत्र और सर्वदा आनन्द रोग की रसानुभूति में ही निमग्न रहते हैं।

हरि!!

– श्री हरि प्रकाश सिंह चौहान

❖ ❖ ❖

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः

गीता के अध्याय 2 के श्लोक 27 में कहा गया है –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म निश्चित है। गीता में कोई भी बात ऐसी नहीं कही गयी है जो व्यवहार की कसौटी पर खरी न उतरती हो या केवल अर्जुन के लिये कही गयी हो अथवा केवल संन्यासियों के लिये, ज्ञानी ध्यानियों के लिये कही गयी हो।

उपरोक्त सूत्र पर थोड़ा सा विचार करें तो स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। दुनियां में प्रत्येक वस्तु व स्थिति परिवर्तनशील है। मृत्यु का अर्थ है जो वस्तु पहले थी वह अब उस रूप में नहीं है। है किन्तु उसका रूप बदल चुका है। जिसको हम मरा हुआ समझते हैं वह अब भी है किन्तु अब वह निश्चेष्ट है, हिलता नहीं है, बोलता नहीं है। इसी प्रकार क्या हमारा शरीर जो बचपन में था, आज वैसा ही है? नहीं। यह पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। क्या यह परिवर्तन होते हुए हमने देखा? नहीं, किन्तु हुआ तो है। तो देखा क्यों नहीं? क्योंकि उस प्रक्रिया की गति इतनी धीमी थी कि वह मानव नेत्रों की पकड़ने की क्षमता से परे है। घड़ी में सैकण्ड की सुई चलती हुई दिखती है, घंटे की नहीं दिखती, जबकि चलती दोनों ही हैं, केवल गति का अन्तर है। इसी प्रकार हमारी आयु जो कल थी वह आज नहीं है, उसमें एक दिन का परिवर्तन हो चुका है। सृष्टि में यदि कुछ स्थिर है, अपरिवर्तनशील है तो वह केवल परब्रह्म परमात्मा है। इसीलिये उसे नित्य, अविनाशी कहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि मृत्यु होती कैसे है? गीता के अध्याय 15 के श्लोक 7 व 8 में इसका उत्तर मिलता है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

जहाँ भगवान बताते हैं कि इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है तथा वायु जैसे गन्ध के स्थान से गन्ध को ले जाता है वैसे ही जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करके जाता है उससे मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके नये शरीर में ले जाता है। अर्थात् प्रकृति का चेतन अंश और जड़ अंश अलग हो जाते हैं तो वह मृत्यु कहलाती है।

गीता के सातवें अध्याय के पाँचवे श्लोक में भगवान बता चुके हैं कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं – एक अपरा अर्थात् जड़ और दूसरी परा अर्थात् जीव।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

इसके बाद छठे श्लोक के पूर्वार्ध में बतलाया कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं। अर्थात् इन दोनों के संयोग से सृष्टि की रचना होती है और वियोग से प्रलय।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥

अब प्रश्न उठता है – मृत्यु होती क्यों है? ऊपर किये गये विश्लेषण से स्पष्ट हो गया होगा कि मृत्यु तो होती ही नहीं है, केवल जीव और शरीर का वियोग होता है। परन्तु यह वियोग होता ही क्यों है? हम जान चुके हैं कि परिवर्तन संसार का नियम है। यदि मृत्यु न हो तो वह स्थिति कल्पनातीत है।

यदि केवल जन्म होता रहे, मृत्यु न हो तो पृथ्वी पर पैर रखने की जगह ही न बचे, यह जीवन जीने योग्य ही न बचे। शरीर जर्जर हो जाये; जो दुःख मृत्यु भुला देती है वे कभी भूलें ही नहीं, दुःखों का पहाड़ खड़ा हो जाये। यही कारण है कि सृष्टि के इतिहास में ऐसा कुछ भी देखने को नहीं मिलता जो सदैव रहा हो (भगवान के अतिरिक्त)। यहाँ तक कि भगवान ने स्वयं भी जो अवतार धारण किये हैं वे भी सदा नहीं रहे।

अब प्रश्न है कि यदि जड़ शरीर यहीं रह जाता है तो चेतन जीव, जो मरता नहीं है वह जाता कहाँ है? इसके उत्तर में भगवान कहते हैं कि जिस-जिस भाव में जीव मृत्यु के समय स्थित होता है – उसी में जाता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 6 –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

जिसके अनुसार मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, अगला जन्म उसी भाव वाले शरीर में होता है।

गीता के अध्याय 14 के श्लोक 14 व 15 में भी स्पष्ट कहा गया है कि जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है तब तो उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोगों को प्राप्त होता है। रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥

तो फिर ईश्वर को अर्थात् मुक्ति को कब प्राप्त होता है? गीता के आठवें अध्याय के श्लोक 5, 7, 8 व 10 में इसकी युक्ति बतायी गयी है –

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

मुक्ति न होने पर तो जन्म-मरण का चक्कर चलता ही रहता है जैसा कि आठवें अध्याय के श्लोक 19 में कहा गया है –

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥

हे पार्थ यह भूत समुदाय उत्पन्न हो हो कर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेश काल में लीन होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है। इसीलिये दूसरे अध्याय के श्लोक 27 में कहा गया है –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

किन्तु अच्छे कर्म करने से अगला जन्म अच्छा कैसे मिलता है? यह बात समझायी गयी है प्रश्नोपनिषद् के प्रश्न 3 के मन्त्र 6 व 7 में, जहाँ शरीर में स्थित समस्त नाड़ियाँ तथा उनकी कार्य-प्रणाली का विज्ञान समझाया गया है। मन्त्र 7 में कहा गया है –

जो एक नाड़ी और है उसके द्वारा उदान वायु ऊपर की ओर विचरता है, वह पुण्य कर्मों के द्वारा मनुष्य को पुण्य लोकों में ले जाता है; पाप कर्मों के कारण पाप योनियों में ले जाता है तथा पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों द्वारा जीव को मनुष्य-शरीर में ले जाता है।

इसका अर्थ तो यही निकलता है कि अगले जन्म में जीव को कहाँ जाना है, इसका निर्धारण मानव इसी जीवन में स्वयं अपने कर्मों के द्वारा कर लेता है – मतलब सभी विकल्प हमारे हाथ में हैं – अगले जन्म में कीट-पशु आदि बनना है, मनुष्य बनना है, देव बनना है या मुक्त होना है। यह सब भगवान का बनाया हुआ विधान है, इसमें वह हस्तक्षेप नहीं करता। हाँ, अपने अनन्य भक्त के लिये तो भगवान को भी नियम बदलते देखा गया है। वैसे ईश्वर को प्राप्त करने की युक्तियाँ जो भगवान ने अध्याय 8 में बतायी हैं उनका अभ्यास भी तो हमें स्वयं ही करना होगा।

जो बात अध्याय 8 के श्लोक 7 में बताई गयी है कि –

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

वही बात अध्याय 10 के श्लोक 9 व 10 में बताई गयी है –

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

निरन्तर मुझ में मन लगाने वाले और मुझ में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भगवान कहते हैं कि मुझे प्राप्त करना हो तो निरन्तर मेरा भजन कर। निरन्तर भजन कैसे करें? क्या और कुछ कार्य न करें? इसके लिये भजन की परिभाषा को समझना होगा। भगवान की आज्ञा के अनुसार कर्तव्य कर्मों को अहंकार रहित होकर, कर्म तथा फल की आसक्ति को त्यागकर किये गये कर्म भी भजन की श्रेणी में आते हैं। सभी कर्मों को भगवान का कार्य समझकर करना भी इसी श्रेणी में आता है।

अध्याय 4 के श्लोक 41 में यज्ञ के अनेकों प्रकारों का वर्णन किया गया है – ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, इन्द्रिय संयम यज्ञ, विषय हवन रूप यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, तप यज्ञ, योग यज्ञ और स्वाध्याय रूप ज्ञान यज्ञ। इन यज्ञों में से किसी न किसी यज्ञ को करना आवश्यक बताया गया है, किन्तु कर्मयोग की विधि से अपने समस्त कर्मों को परमात्मा के अर्पण करने को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ बताया है। इस यज्ञ के करने से कर्म बन्धन का कारण नहीं होते और कर्म बन्धन ही तो पुनर्जन्म का कारण होते हैं। पुनर्जन्म न होने का अर्थ है, मुक्ति अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥

अध्याय 4 के श्लोक 41 में भगवान कहते हैं – हे धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों का परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किये हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

सारांश यह है कि **'जातस्य हि मृत्युः'** तो निश्चित है किन्तु **'ध्रुवं जन्म मृतस्य च'** का अतिक्रमण किया जा सकता है मुक्ति प्राप्ति के उपायों द्वारा, यद्यपि अर्जुन को जो कहा गया है वह परिस्थिति के अनुसार उचित ही था।

– रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'

❖ ❖ ❖

जीवन की सार्थकता

गोस्वामी जी का कथन है कि मनुष्य का जीवन बड़े भाग्य का फल है। यह ऐसा जीवन है जिसको सुर, नर, मुनि आदि सभी तरसते हैं। जब मनुष्य को यह जीवन प्राप्त हो गया तो इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसको इस प्रकार व्यतीत करना चाहिये जिससे जीवन की सार्थकता का अनुभव हो जाये।

वैसे तो हर व्यक्ति यही कहता है कि उसका जीवन सार्थक है। सार्थकता से तात्पर्य यह है कि जीवन आदर्श हो, अनुकरणीय हो, और मनुष्य मात्र में चेतनता उत्पन्न करने वाला हो। जो महान् पुरुष होता है उसका जीवन सार्थक होता है। लोग उसका अनुकरण करते हैं। सत् मार्ग पर व्यतीत होने वाला जीवन सदैव अनुकरणीय होता है। संसार के इतिहास में राजा हरिश्चन्द्र का जीवन सत्यव्रत का पालन करने में अद्वितीय है। अतः अनुकरणीय है। हकीकत राय का जीवन धर्म के लिये अपने को बलिदान करने में महान् है। आज भारतवर्ष में वह चोटी प्रायः लोप हो गई है जिसकी रक्षा में हकीकत राय ने अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी थी। जिसका हम मूल्य नहीं करते वह वस्तु शनैः-शनैः लोप हो जाती है। इस देश के अनेक सपूतों ने अपने प्राणों को देश पर न्योछावर कर दिया यह उनका देश प्रेम था। हमने इन सबका मूल्य हृदय से नहीं किया, फल यह हो रहा है कि हमारा आदर्श लोप होता जा रहा है।

संसार में दो पात्र राम और सीता चरित्र के लिये अद्वितीय हैं। सीता जैसी नारी संसार के किसी देश में नहीं प्राप्त होती। राम को ही मर्यादा पुरुषोत्तम कहकर पुकारते हैं। पुरुषों में उत्तम जिसने पुरुषों को जीवन की मर्यादा का आदर्श उपस्थित किया वह अलौकिक पुरुष रहा। उदाहरण में जिसको आदर्श के लिये प्रस्तुत करते हैं वह राम भगवान् हो गया और अब वह भगवान् ही रहेगा। उसकी लीला को हर नगर और महानगरों में बड़े गौरव से प्रदर्शित किया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो संसार के सब मनुष्यों में सिया राम के ही दर्शन किये और उनके समक्ष नत मस्तक हुए।

इन सब उदाहरणों को जब हम विचार का विषय बनाते हैं तो हमारा मस्तक गौरव से ऊँचा हो जाता है। इन कुछ उदाहरणों से हम भी अनुकरण करके जीवन को पवित्र बना सकते हैं। जीवन की सार्थकता का एक साधारण ध्येय यह है कि हम मनुष्य हैं, अतः हमें मनुष्य के लिये अपने को न्योछावर करना ही श्रेयस्कर होगा। जिसमें अच्छे विचारों का अभाव है, जिसके हृदय में प्रेम की गंगा नहीं बहती, वह हृदय पत्थर के समान है क्योंकि उसमें अपने देश के प्रति प्रेम भावना नहीं है। वह अपने को पहचान नहीं पाया है। उच्च आचरण जीवन को सार्थक बनाते हैं और व्यक्ति उनका अनुकरण करता है।

सार्थक और निरर्थक जीवन में कौन सा जीवन उत्तम है यह व्यक्तिगत विचार का विषय है। जीवन तो सभी व्यतीत करते हैं। पेट सब भरते हैं परन्तु कौन सा जीवन सार्थक है? इसका उत्तर है – वही जो परोपकार के लिये व्यतीत होता है। नदी अपने जल का स्वयं प्रयोग नहीं करती है। वृक्ष अपने फलों को स्वयं नहीं खाते। हम इधर से उन पर पत्थर फेंकते हैं इसके बदले में वे हमको फल देते हैं। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर परोपकार के लिये है। जो जितना परोपकार करेगा वह उतना ही जीवन को सार्थक बनायेगा।

जीवन व्यक्तिगत है परन्तु सार्थक जीवन व्यक्तिगत होते हुए भी सामूहिक है। वह समाज की सम्पत्ति बन जाता है। महात्माओं का जीवन दूसरा उदाहरण है। सन्त और महात्मा देश और समाज की वह निधि हैं, कि इसका मूल्य जितना किया जाये उतना ही कम होगा। सन्त समागम का बड़ा महत्व है। सत्संग की महिमा स्वर्ग, अपवर्ग आदि से भी बड़ी है। संसार और इससे परे जो भी सुख हैं वह एक पल के सत्संग के बराबर भी नही हैं। जीवन को सुखमय बनाने का वह सत्संग अनुपम साधन है। सत्संग और हरि कथा प्रत्येक को प्राप्त नहीं होती।

– प्रो. डॉ. चिरंजी लाल झा, गाजियाबाद

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

साधना चिन्तन

''मनुष्य की अवस्था प्राप्त करने से पूर्व पशु की स्थिति अविवेक की स्थिति है। नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ उसे यन्त्र-वत् ले जाती हैं; और उसका नियमित जीवन चलता रहता है। परन्तु मनुष्य में विचार का उदय होता है। वह अपने रास्ते को चुन सकता है और बदल भी सकता है। विकास के क्षेत्र में वह समुचित चेष्टा द्वारा जल्दी भी आगे बढ़ सकता है तथा अनुचित उपयोगों द्वारा अपनी गति का अवरोध भी कर सकता है। यही मनुष्यत्व का लक्षण है। यहीं पर स्वधर्म तथा कर्तव्य का प्रश्न उपस्थित होता है। पशु के सामने 'चुनाव' की सम्भावना न थी, अतः ऐसा प्रश्न भी न था।''

– स्वामी रामानन्द

पशु-मनुष्य-परमात्मा

मनुष्य के विकास की यात्रा पशु से परमात्मा होने तक की यात्रा है।

मनुष्य का अतीत है उसकी पशुता और भविष्य है उसका परमात्मा होना।

मनुष्य के लिये निम्न प्रवृत्तियाँ – हिंसा, आदि, पशु से मिले संस्कार हैं। यह मनुष्य के लिये उसकी बीमारियाँ हैं, लेकिन पशु के लिये नहीं क्योंकि पशु के तल पर इसके अतिरिक्त और कोई सम्भावना ही नहीं।

यह निम्न प्रवृत्तियाँ मनुष्य के विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली बीमारियाँ हैं। चेतना ज्यों-ज्यों विकसित होती चली जाती है मनुष्य का अतीत उसके लिये जंजीर बनता चला जाता है। उसका बीता कल उसके लिये बन्धन बन जाता है।

इसलिये जिसे विकास मार्ग पर आगे बढ़ना है उसे रोज अपने कल का अतिक्रमण कर आगे बढ़ना है।

याद रक्खो जो अपने अतीत को मिटाने को राज़ी नहीं वह विकास के पथ पर आगे बढ़ने से इंकार कर रहा है। जो अपने पशु का अतिक्रमण नहीं कर पाया वह प्रभु के मन्दिर में प्रवेश नहीं पा सकता।

पशुता मनुष्य का अतीत है। मनुष्य तो एक संक्रमण है, एक बीच का सेतु है जहाँ से पशु परमात्मा में संक्रमित और रूपान्तरित होता है।

जीवन में जैसे ही विकास का नया चरण उठाया जाता है, नई जिम्मेदारियों के चरण भी उठ जाते हैं। जिस दिन से पशु को अतिक्रमण कर मनुष्य – मनुष्य हुआ उसी दिन से सद्वृत्तियाँ – करुणा, प्रेम, सेवा, आदि, उसकी जिम्मेदारियों का हिस्सा हो गईं क्योंकि मनुष्य का फूल निम्न प्रवृत्तियों के मध्य खिल ही नहीं सकता। प्रेम के बीच ही मनुष्य का फूल खिलता है।

निम्न प्रवृत्तियाँ मनुष्य का स्वभाव नहीं हैं बल्कि प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये तथ्य हैं। वे पशु के स्वभाव हैं। मनुष्य उस स्वभाव से गुजरा है इसलिये पशु के जीवन के सारे अनुभव अपने साथ ले आया है।

निम्न प्रवृत्तियाँ पशु के लिये स्वभाव हैं क्योंकि पशु के लिये कोई चुनाव नहीं है। मनुष्य के लिये स्वभाव नहीं हैं क्योंकि मनुष्य के लिये चुनाव है। याद रक्खो! मनुष्यता आरम्भ होती है चुनाव से, निर्णय से, संकल्प से।

मनुष्य चौराहे पर खड़ा है। किसी भी रास्ते को पकड़ सकता है। कोई पशु चौराहे पर नहीं खड़ा। उसका एक ही रास्ता होता है जिसका कोई चुनाव नहीं। मनुष्य चाहे तो हिंसक हो सकता है, चाहे तो

अहिंसक हो सकता है। यह स्वतन्त्रता है उसकी। पशु की यह स्वतन्त्रता नहीं। पशु की यह मजबूरी है कि वह जो हो सकता है वही है। इसलिये पशु के स्वभाव में और पशु के तथ्य में कोई अन्तर नहीं होता।

पशु के भविष्य में और पशु के अतीत में कोई दूरी नहीं होती। पशु के होने में और हो सकने की सम्भावना में कोई फर्क नहीं होता। पशु जो हो सकता है, वह है।

मनुष्य का मामला एकदम विपरीत है। मनुष्य कल उससे भिन्न हो सकता है जो आज है। इसलिये किसी गधे को हम यह नहीं कह सकते कि तुम कम गधे हो; लेकिन आदमी से कह सकते हैं कि तुम कुछ कम आदमी मालूम पड़ते हो।

आदमियत की मात्रा में निश्चित अन्तर है। किसी सन्त को हम नहीं कह सकते कि आप में और हिटलर में आदमियत का कोई फर्क नहीं। महात्मा बुद्ध को हम नहीं कह सकते कि आप में और रावण में आदमियत का कोई फर्क नहीं। किसी से कहना पड़ता है कि आदमियत इतनी ज्यादा है कि उसके लिये स्वामी, सन्त, साधु, महात्मा, आदि शब्द खोजने पड़ते हैं। इन शब्दों को खोजने का कुल अर्थ इतना है कि आदमियत इतनी अधिक थी कि आदमी कहना अपर्याप्त मालूम पड़ा।

आदमी जो है वही सब कुछ नहीं है, बहुत कुछ हो सकता है। अभी उसका अतीत उसमें पशु की यात्रा से जुड़ा है।

आदमी का वास्तविक स्वभाव वह है जो वह अपनी पूर्णता में प्रकट होगा, तब होगा। आदमी की अभी की स्थिति वह है जो उसने जीवन-क्रम की यात्रा में अभी तक अर्जित की है।

इसलिये मनुष्य की निम्न प्रवृत्तियाँ अर्जित हैं और सद्प्रवृत्तियाँ स्वभाव। निम्न प्रवृत्तियाँ छोड़ी जा सकती हैं, सद्प्रवृत्तियाँ पाई जा सकती हैं।

याद रक्खो निम्न प्रवृत्तियाँ छोड़ना सदैव सम्भव है क्योंकि वह मनुष्य का स्वभाव नहीं है वह तो पशुता से अर्जित संस्कार है।

प्रत्येक पापी का एक भविष्य है और प्रत्येक पापी का भविष्य एक सन्त का भविष्य है। ऐसे अनेक उदार उदाहरण हैं। हम प्रत्येक पापी से सार्थक रूप में कह सकते हैं कि तुम भविष्य के सन्त हो।

ऐसे ही प्रत्येक सन्त का एक अतीत होता है और प्रत्येक सन्त का अतीत पापी का अतीत होता है। हम प्रत्येक सन्त से कह सकते हैं कि तुम अतीत के पापी हो (जन्मों का अन्तराल हो सकता है)। लेकिन सन्त का फिर आगे कोई भविष्य नहीं है।

सन्त का अर्थ है जो पूर्ण स्वभाव को उपलब्ध हो गया, जो वही हो गया जो हो सकता था। फूल पूरा खिल गया। कली का भविष्य है। कली चाहे तो कली ही रह सकती है, चाहे तो फूल भी बन सकती है। लेकिन फूल फिर लौटकर कली नहीं बन सकता, चाहे तो भी। फूल फिर फूल हो गया।

जब हम कली से कहते हैं कि फूल होना तेरा स्वभाव है, तो इसका यह मतलब नहीं कि हम तथ्य की, वास्तविकता की, बात कह रहे हैं। हम केवल सम्भावना की बात कह रहे हैं। हम कली से कह रहे हैं फूल होना तेरा स्वभाव है। तू फूल होना चाहे तो फूल हो सकती है। यदि कोई कली कली ही बनी रहे और वह कहे कि तथ्य तो यही है कि मैं कली हूँ और मैं कली ही रहूँगी क्योंकि कली होना मेरा स्वभाव है, क्योंकि मैं कली हूँ, तो वह फूल बनने की सम्भावना से इंकार कर रही है। वह कली ही बनी रहेगी।

मनुष्य यदि कहे निम्न प्रवृत्तियाँ मेरा स्वभाव हैं तो वह ऐसी ही बात कह रहा है जैसी यह भ्रान्त कली कह रही है।

ऐसी अंधेरी रात हो जहाँ हाथ को हाथ न सूझता हो। ऐसी अन्धकारमयी गुफा में बैठा मनुष्य आँखें

बन्द रखे या खुली रखे इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आँख बन्द हों तो भी अन्धकार, खुली हों तो भी अन्धकार होगा।

फिर सुबह हो जाये। सूर्य निकल आये। किरणों का प्रकाश सर्वत्र फैल जाये और तब भी वह आदमी अपनी आँखें बन्द किये बैठा रहे तो फर्क पड़ता है। रात के अन्धकार की कोई भी जिम्मेदारी उस गुफा में बैठे आदमी की न थी। अन्धकार था, वह स्थिति थी। लेकिन सुबह जब सूरज निकल आया तब भी अगर वह आदमी आँखें बन्द किये बैठा रहे तो जो अन्धकार उसे दिखाई पड़ेगा वह उसकी अपनी जिम्मेदारी है। वह चाहे तो आँख खोल सकता है और अन्धकार से मुक्त हो सकता है।

पशु का जीवन ऐसी अंधेरी रात जैसा जीवन है। वह अंधेरी रात में है और अंधेरे के लिये जिम्मेदार नहीं। पशु में कोई बोध नहीं है स्वयं के होने का कोई विकल्प भी नहीं है, कोई सम्भावना भी नहीं है कि वह स्वयं को जान सके। इसलिये पशु अगर आत्मज्ञान न खोजे, निम्न प्रवृत्तियों से छुटकारे का विचार न करे तो उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

लेकिन मनुष्य पशु की यात्रा से उस जगह प्रवेश कर गया है, चेतना के लोक में, जहाँ सूर्य का प्रकाश है। अब अगर कोई आदमी अंधेरे में है तो उसकी जिम्मेदारी सिवा उसके और किसी की नहीं हो सकती।

मनुष्य यदि निम्न प्रवृत्तियों के वशीभूत है, आत्म ज्ञान की ओर से उदासीन है तो केवल अपनी आँखें बन्द रखने के कारण जबकि वह आँखें खोलने के लिये स्वतन्त्र है। वह हमारी स्थिति नहीं है, हमारा चुनाव है।

प्रकाश चारों तरफ मौजूद है और आदमी उस जगह खड़ा है विकास के दौर में जहाँ से वह पशुता का अतिक्रमण कर सकता है। जहाँ से वह स्वयं को जान सकता है कि वह कौन है और क्यों आया है।

और यदि वह अब भी नहीं जानता तो स्वयं के अतिरिक्त और कौन जिम्मेदार होगा।

पशु जैसा भी है उसकी जिम्मेदारी अगर किसी पर होगी तो परमात्मा पर होगी।

आदमी परमात्मा की जिम्मेदारी के बाहर है। अब अगर वह दु:खी है तो उसका चुनाव है। आनन्दित है तो उसका चुनाव है। अन्धकार में रहे या प्रकाश में उसके हाथ की बात है। अब मनुष्य अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता।

मनुष्य की यह जिम्मेदारी ही उसकी गरिमा है, गौरव है। यही उसकी मनुष्यता भी है। यहीं से वह पशुता के बाहर निकलता है।

अत: मनुष्य को निम्न प्रवृत्तियों के लिये क्षमा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सब अब उसकी पसन्द से है, उसकी मर्जी से है। अब वह चुन रहा है इन्हें। यह उसका चुनाव है। यह उसकी अनिवार्यता नहीं। यह उसकी नियति नहीं। यह चुनाव उसका अपना ही भ्रान्त निर्णय है।

क्षमा नहीं किया जा सकता क्योंकि इस स्थिति का जिम्मेदार मनुष्य स्वयं है। कली के भीतर फूल होने की सम्भावना परमात्मा ने पूरी दे दी थी। वह फूल हो सकती थी लेकिन कली ही बने रहने की जिम्मेदारी स्वयं उसकी है।

पशु का वर्तमान हमारा अतीत है और हमारा भविष्य है परमात्मा। यह दोनों हमारी सम्भावनायें हैं। खाइयाँ हैं निम्न प्रवृत्तियाँ, हमारे अतीत का स्मरण, और ऊँचाईयाँ हैं कैलाश और गौरीशंकर के शिखर, परमात्मा, हमारे भविष्य की आकांक्षा।

साधक को पशु की खाइयों को मनुष्य के सेतु से लाँघ कर परमात्मा की ऊँचाइयों तक पहुँचना है।

पशु से परमात्मा तक की यात्रा ही उसकी नियति है।

– श्री पुरुषोत्तम भटनागर, लखनऊ

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

गीता प्रवचन

(नोटः– पूज्य विनोबा भावे सन् 1932 ई. में धुलिया (खान देश) जेल में थे, तब उन्होंने गीता पर प्रति रविवार को प्रवचन किये थे। वही पुस्तिका रूप में 'गीता प्रवचन' के नाम से प्रकाशित हुए थे। उसी से आज आठवें अध्याय का उनका प्रवचन प्रकाशित कर रहे हैं। आशा करते हैं कि साधक भाई-बहिनों को इसे पढ़ कर लाभ होगा।)

मनुष्य का जीवन अनेक संस्कारों से युक्त होता है। हम से असंख्य क्रियायें होती रहती हैं। यदि हम उनका हिसाब लगाने लगें तो उसका अन्त ही नहीं आ सकता। यदि मोटे तौर पर हम चौबीस घंटों की ही क्रियाओं को देखने लगें तो उनकी गिनती बढ़ जायेगी खाना-पीना, बैठना, सोना, चलना, फिरना, काम करना, लिखना, बोलना, पढ़ना, आदि। इनके अलावा नाना प्रकार के स्वप्न, राग द्वेष, मान-अपमान, सुख-दुःख आदि अनन्त दिखाई देंगे। इन सबके संस्कार हमारे मन पर होते रहते हैं। अतः अगर कोई मुझ से पूछे कि जीवन किसे कहते हैं तो मैं उसकी व्याख्या करूँगा – **संस्कार संचय**।

संस्कार दोनों प्रकार के होते हैं – अच्छे भी और बुरे भी। दोनों का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता रहता है। बचपन की क्रियाओं की तो हमें याद भी नहीं रहती। सारा बालपन इस तरह मिट जाता है जैसे स्लेट पर लिखकर पोंछ दिया हो। पूर्व जन्म के संस्कार तो बिल्कुल ही साफ पोंछ दिये जैसे हो जाते हैं – यहाँ तक कि इस बात की भी शंका उठ सकती है कि पूर्व जन्म था भी या नहीं। जब इस जन्म का ही बचपन याद नहीं आता तो फिर पूर्व जन्म की तो बात ही क्या? पूर्व जन्म को जाने दीजिये हम इसी जन्म का विचार करें। जितनी क्रियायें हमें याद रहती हैं उतनी ही होती हैं – सो बात नहीं। क्रियायें अनेक होती हैं और ज्ञान भी अनेक, परन्तु ये क्रियायें व ज्ञान मिट कर अन्त में कुछ संस्कार ही शेष रह जाते हैं। रात को सोते समय दिन की क्रियाओं को यदि हम याद करने लगें तो भी याद नहीं आती। याद कौन-सी क्रियायें आती हैं? वे ही क्रियायें हमारी आँखों के सामने आ जाती हैं जो बहुत स्पष्ट व प्रभावकारी होती हैं। यदि हमारा बहुत लड़ाई झगड़ा किसी से हुआ हो तो वह याद रहता है, क्योंकि उस दिन की वही मुख्य कमाई होती है। मुख्य व स्पष्ट क्रियाओं के संस्कार मन पर बड़े गहरे हो जाते हैं। मुख्य क्रिया याद रहती है शेष सब फीकी पड़ जाती हैं। यदि हम रोजनामचा लिखने बैठें तो दो-चार महत्व की ही बातें लिख लेते हैं, यदि प्रति दिन के ऐसे संस्कार को लेकर एक सप्ताह का हिसाब लगाने लगें तो और भी कई बातें इसमें से निकल जायेंगी व सप्ताह की मुख्य घटनायें ही कायम रह जायेंगी। फिर महीने भर के बाद हम अपने पिछले कामों का हिसाब लगाने बैठे तो उतनी ही बातें हमारे सामने आती रहेंगी जो उस मास में बहुत मुख्य-मुख्य रही होंगी। इसी तरह फिर छः महीना, साल, पाँच साल का हिसाब लगायें तो बहुत ही थोड़ी महत्वपूर्ण बातें याद रहेंगी और उन्हीं के संस्कार बनेंगे। असंख्य क्रियाओं व अनन्त ज्ञानों के हो जाने पर भी अन्त को मन के पास बहुत थोड़ी बचत रहती है। वे विभिन्न कर्म व ज्ञान आये व अपना काम करके मर गये। उन सब कर्मों के पाँच-दस दृढ़ संस्कार ही शेष रह जाते हैं। वे संस्कार ही हमारी पूँजी हैं। हम जीवन रूपी व्यापार करके सिर्फ संस्कार रूपी सम्पत्ति जोड़ते हैं। जैसे व्यापारी रोज का, महीने का व साल भर का खर्च करके अन्त में नफे या टोटे का एक ही आँकड़ा निकालता है उसी प्रकार जीवन का हाल होता है।

अनेक संस्कारों का जमा नामे होते-होते अन्त को एक अत्यन्त ठोस सीमित निचोड़ जैसी चीज बाकी बच जाती है। जन जीवन की अन्तिम घड़ी आती है तब जीवन की आखिरी रोकड़ बाकी आत्मा याद करने लगता है। जन्म भर क्या किया, इसकी जब वह याद करता है तो कमाई के रूप में दो चार बातें ही नजर आती हैं इसका अर्थ यह नहीं कि वे सब कर्म व ज्ञान व्यर्थ चले गये। उनका काम पूरा हो गया है। हजारों उखाड़-पछाड़ के बाद आखिर में कुल पाँच हजार का घाटा-नफा या दस हजार का नफा, इतना ही सार व्यापारी के हाथ लगता है। नुकसान हुआ तो छाती बैठ जाती है, फायदा रहा तो दिल उछलने लगता है।

हमारे जीवन की भी ऐसी ही बात है। मरने के समय यदि खाने की वासना हुई तो सारी जिन्दगी भर भोजन की रुचि लेने का ही अभ्यास करते रहे यह सिद्ध होगा। भोजन या स्वाद की वासना – यही जिन्दगी भर की कमाई। किसी को मरते समय यदि बेटे की याद आई तो उसका पुत्र सम्बन्धी संस्कार ही बलवान मानना चाहिये। बाकी जो असंख्य कर्म किये वे गौण सिद्ध हो गये। अंकगणित में अपूर्णांक के सवाल होते हैं। कितनी बड़ी-बड़ी संख्यायें, परन्तु संक्षेप बनाते-बनाते अन्त को एक अथवा शून्य ऐसा उत्तर आता है। इसी तरह जीवन में संस्कारों की अनेक संख्यायें चली जाकर अन्त में एक बलवान संस्कार ही सार रूप में रह जाता है। जीवन रूपी सवाल का वह उत्तर होता है। अन्तकालीन स्मरण ही सारे जीवन का फलित होता है।

जीवन का यह अन्तिम सार मधुर निकले, अन्त की यह घड़ी मधुर हो इसी दृष्टि से सारे जीवन के उद्योग होने चाहिये। जिसका अन्त मधुर वह सब मधुर। उस अन्तिम उत्तर पर ध्यान रखकर सारे जीवन का सवाल हल करना चाहिये। इस ध्येय को दृष्टि के सामने रखकर सारे जीवन की योजना बनाओ। जब कोई सवाल हल करते हो तो जो खास प्रश्न पूछा गया है उसी को सामने रखकर उत्तर लाते हैं। उसी तरह की रीति से काम लेना पड़ता है। अतः मरने के समय जो संस्कार दृढ़ रहें या उठें – ऐसी इच्छा होगी। उसके अनुसार ही सारे जीवन का प्रवाह मोड़ना चाहिये। दिन-रात उसी की तरफ झुकाव रहना चाहिये।

इस आठवें अध्याय में यह सिद्धान्त बताया गया है कि जो विचार मरते समय प्रबल रहता है, वही अगले जन्म में बलवत्तर साबित होता है। इस पाथ्य को साथ लेकर जीव आगे यात्रा के लिये निकलता है। आज दिन की कमाई लेकर, नींद के बाद हम कल का दिन शुरू करते हैं। उसी तरह इस जन्म की जमा पूँजी लेकर मरण-रूपी नींद के बाद फिर हमारी यात्रा शुरू होती है। इस जन्म का जो अन्त है वही अगले जन्म की शुरूआत होती है। अतः सदैव मरण का स्मरण रख कर चलो। मरण का स्मरण रखने की जरूरत और भी इसलिये है कि मृत्यु की भयानकता का मुकाबला किया जा सके। उसका रास्ता निकाला जा सके। एकनाथ महाराज की एक बात है। एक सज्जन ने उनसे पूछा – ''महाराज आपका जीवन कितना सीधा सादा, कितना निष्पाप है। हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं? आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं होते? किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं, टंटा-बखेडा नहीं। कितना शान्त, कितना प्रेम पूर्ण, कितना पवित्र है, आपका स्वभाव।'' एकनाथ ने कहा – ''फिलहाल मेरी बात रहने दो। तुम्हारे सम्बन्ध में मुझे एक बात मालूम हुई है। आज से सातवें दिन तुम्हारी मौत आ जायेगी।'' अब एकनाथ की कही बात को झूठ कौन मानता? सात दिन में मृत्यु। सिर्फ 168 घंटे ही बाकी रहे। हे भगवान, यह क्या अनर्थ है! वह मनुष्य जल्दी-जल्दी घर दौड़ गया। कुछ सूझ नहीं पड़ता था। आखिरी समय की, सब कुछ समेट लेने की बातें कर रहा था। अब बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ गया। छः दिन बीत गये – सातवें दिन एकनाथ उससे मिलने आये। उसने नमस्कार किया। एकनाथ

ने पूछा – ''क्या हाल है?'' उसने कहा – ''बस, अब चला।'' नाथ जी ने पूछा – ''इन छः दिनों में कितना पाप किया? – पाप के कितने विचार मन में आये?'' वह आसन्न-मरण व्यक्ति बोला – ''नाथ जी पाप का विचार करने की तो बिल्कुल फुरसत ही नहीं मिली। एक मौत ही आँखों के सामने खड़ी थी।'' नाथ जी ने कहा – ''हमारा जीवन इतना निष्पाप क्यों है? इसका उत्तर अब मिल गया न? मरण रूपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे तो फिर पाप सूझेगा किसे? पाप करने के लिये भी निश्चिन्तता चाहिये। मरण का सदैव स्मरण रखना पाप से मुक्त होने का उपाय है। यदि मौत सामने दीखती रहे तो फिर मनुष्य किस बल पर पाप करेगा।

परन्तु मनुष्य मरण का स्मरण टालता है। पास्कल नामक एक फ्रेंच दार्शनिक हो गया है। उसकी एक पुस्तक है – 'पांसे'। 'पांसे' का अर्थ है 'विचार'। उसने इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न स्फुट विचार दिये हैं उसमें वह एक जगह कहता है – ''मौत सदा पीछे खड़ी है। परन्तु मनुष्य का प्रयत्न यह सतत् रहा है कि उसे भूलें कैसे? किन्तु वह यह बात अपने सामने नहीं रखता कि मृत्यु को याद रख कर कैसे चलें?'' मनुष्य को मरण शब्द तक बरदाश्त नहीं होता। खाते समय यदि मौत का नाम किसी ने ले लिया तो कहते हैं – ''क्या अशुभ बात मुँह से निकालते हो?'' परन्तु इतना होते हुए भी हमारा एक-एक कदम मौत की तरफ जा ही रहा है। बम्बई का टिकट कटा कर जब एक बार हम रेल में बैठ गये तो हम भले ही बैठे रहें, परन्तु गाड़ी हमें बम्बई ले जाकर छोड़ देगी। जन्म होते ही हमने मौत का टिकट कटा रखा है। अब आप बैठे रहिये या दौड़ते रहिये। बैठे रहेंगे तो भी मौत आयेगी, दौड़ते रहेंगे तो भी आयेगी। आप मौत का विचार करें या न करें, वह आये बिना न रहेगी। मरण निश्चित है, और बातें भले ही अनिश्चित हों। सूर्य अस्ताचल की ओर गया कि हमारी आयु का एक अंश वह खा जाता है। जीवन के भाग यों कटते जा रहे हैं, जीवन छीज रहा है, एक-एक बूँद घट रहा है। तो भी मनुष्य को उसका कुछ सोच नहीं होता। ज्ञानेश्वर कहते हैं – आश्चर्य दीखता है। ज्ञानदेव को आश्चर्य होता है कि मनुष्य क्योंकर इतनी निश्चितता अनुभव करता है। मनुष्य को मरण का इतना भय मालूम होता है कि उसे मरण का विचार तक सहन नहीं होता। वह सदा उसके विचार व ख्याल तक से बचना चाहता है। आँखों पर पर्दा डालकर बैठ जाता है। लड़ाई में जाने वाले सैनिक मरण का ख्याल न आने पाये इसलिए खेलते हैं, नाचते गाते हैं, सिगरेट पीते हैं। पास्कल कहता है कि ''मरण सर्वत्र प्रत्यक्ष दीखते हुए भी वह टामी वह सिपाही उसे भूलने के लिए खाने पीने में व गान तान में मस्त ही रहेगा।''

हम सब इस टामी की तरह हैं। चेहरे को गोल हंस-मुख बनाने का प्रयत्न करना, सूखा हो तो तेल, पाउडर लगाना, बाल सफेद हो गये हों तो खिजाब लगाना आदि प्रयत्न मनुष्य करता है। छाती पर मौत नाच रही है। फिर भी हम टामी की तरह उसे भूलने का अक्षय प्रयत्न कर रहे हैं। और चाहे कुछ भी बातें करेंगे, पर मौत की बात मत निकालो कहेंगे। मैट्रिक पास लड़के से पूछो कि ''अब आगे क्या इरादा है।'' तो कहता है – अभी मत पूछो अभी तो फर्स्ट ईयर में हैं। ''दूसरे साल फिर पूछोगे तो कहेगा – पहले इन्टर तो हो जाने दो, फिर देखेंगे।'' यही सिलसिला चलता है, जो आगे होने वाला है उसका पहले से विचार क्या नहीं करना चाहिये? अगले कदम के बारे में पहले से सोच लेना चाहिये, नहीं तो वह खड्डे में गिरा सकता है। परन्तु विद्यार्थी इसको टालता है। बेचारे की शिक्षा ही इतनी अन्धकारमय होती है कि उससे उस पार का भविष्य दिखाई ही नहीं देता। अतः आगे क्या करना है यह सवाल ही वह सामने नहीं आने देता। क्योंकि उसे चारों ओर अन्धकार ही दिखाई देता है, परन्तु भविष्य टाला नहीं जा सकता वह तो सिर पर आकर सवार होता ही है।

कॉलेज में अध्यापक तर्क शास्त्र पढ़ाते हैं। ''मनुष्य मर्त्य है, सुकरात मनुष्य है, अतः सुकरात मरेगा।'' यह अनुमान वे सिखाते हैं – वे सुकरात का उदाहरण देते हैं, खुद अपना क्यों नहीं देते? इस तरह मृत्यु को भूलने का यह प्रयत्न सर्वत्र जान बूझ कर हो रहा है। परन्तु इससे मृत्यु कहीं टल सकती है? हम मरण को अपने सामने नहीं देख सकते। उससे बचने के लिए हम हजारों तरकीब निकालेंगे तो भी अन्त में वह हमारी गरदन धर ही दबाता है और फिर जब मौत आती है तब मनुष्य अपने जीवन की रोकड़ बाकी देखता है। अतः हमें चाहिये कि हम इस बात को याद रख कर कि जीवन का सिरा मौत की ओर गया हुआ है, अन्तिम क्षण को पुण्यमय अत्यन्त पावन व मधुर बनाने का अभ्यास जीवन भर करते रहें। आज से ही इस बात का विचार करते रहना चाहिये कि मन पर ऊँचे से ऊँचे सुन्दर से सुन्दर संस्कार कैसे पड़ें। परन्तु अच्छे संस्कारों का अभ्यास पड़ा किसे है? इससे उल्टा, बुरी बातों का अभ्यास अलबत्ता दिन रात होता रहता है। जीभ, आँख व कान को हम चटोरपन सिखा रहे हैं। चित्त को इससे भिन्न अभ्यास में लगाना चाहिये, अच्छी बातों की ओर चित्त लगाना चाहिये। उसमें उसे रंग जाना चाहिये।

जिस क्षण अपनी भूल प्रतीत हो जाये उसी क्षण से उसे सुधारने में व्यस्त हो जाना चाहिये। भूल मालूम हो जाने पर भी क्या उसे वैसी ही करते रहेंगे? जिस क्षण हमें अपनी भूल मालूम हुई उसी क्षण हमारा पुनर्जन्म हुआ। उसे अपना नवीन बचपन, अपने जीवन का नया प्रभात समझो। अब तुम सचमुच में जगे हो। अब रात दिन जीवन की जाँच पड़ताल करते रहो व सावधान रहो। ऐसा न करोगे तो फिर फिसलोगे, फिर बुरी बात का अभ्यास शुरू हो जायेगा।

बहुत साल पहले मैं अपनी दादी से मिलने गया था। बहुत बूढ़ी हो गई थीं। मुझ से कहती – ''विन्या, अब इधर मुझे याद नहीं रहता। घी की दोहनी लेने जाती हूँ और वैसे ही लौट आती हूँ।'' परन्तु पचास साल पहले की गहनों की एक-एक बात मुझ से कहा करतीं। पाँच मिनट पहले की बात याद नहीं रहती, मगर पचास साल पहले के बलवान संस्कार अन्त तक सतेज थे। इसका कारण क्या? वह गहने वाली बात उसने हर एक से कही होगी। उस बात का सतत उच्चार होता रहा। अतः वह जीवन से चिपक कर बैठ गई। जीवन के साथ एकरूप हो गई। मैंने मन में कहा – ''भगवान करे, दादी को मरते समय उन गहनों की याद न आये तो चैन से मर पाये।''

जिस बात का हम रात दिन अभ्यास करते हैं वह हमसे क्यों चिपकी न रहेगी? उस अजामिल की कथा पढ़ कर भ्रम में न पड़ जाना। वह ऊपर से पापी था, परन्तु उसके जीवन के भीतर से पुण्य की धारा बह रही थी। वह पुण्य अन्तिम क्षण में जाग उठा। सदा सर्वदा पाप करके अन्त में राम-नाम अचूक याद आ जायेगा – इस धोखे में मत रह जाना। बचपन से ही मन लगा कर अभ्यास करो। ऐसी चिन्ता रखो कि हमेशा अच्छे ही संस्कार संग्रहीत हों। ऐसा न हो कि इससे क्या होगा, व उससे क्या होगा? चार बजे ही क्यों उठे? सात बजे उठे तो उससे क्या बिगड़ा? ऐसा कहने से काम नहीं चलेगा। यदि सब को बराबर ऐसी आजादी देते चले गये तो आखिर में फँस जाओगे। फिर सच्चे संस्कार अंकित नहीं होने पायेंगे। एक-एक कण बीन कर लक्ष्मी-सम्पत्ति जुटानी पड़ती है। एक-एक क्षण को व्यर्थ न जाने देते हुए विद्यार्जन में लगाना पड़ता है। इस बात का ध्यान रखो कि प्रत्येक क्षण संस्कार अच्छा ही पड़ रहा है न? खराब बात कही तो पड़ गया उसी समय बुरा संस्कार।

– संकलनकर्ता श्री प्यारे लाल भारतीय, कानपुर

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

बोझ प्रभु के कन्धे पर

प्रभु को चिन्ता सबकी रहती है, पर विशेष चिन्ता उसे दीनों की होती है। और लोग भी प्रभु के हैं, पर दीन तो प्रभु के ही हैं। औरों का आधार और भी होता है, पर दीनों का आधार तो दीनदयाल ही होता है। समुद्र के बीच जहाज के मस्तूल से उड़े हुए पंछी को मस्तूल के सिवा और ठिकाना कहाँ हो सकता है? उससे हटकर वह कहाँ रह सकता है? दीन का चित्त प्रभु से छूटे भी तो किससे लगे? इसीलिये दीन प्रभु के कहलाते हैं, प्रभु दीनों का कहलाता है। दीनता का यही वैशिष्ट्य देखकर कुन्ती ने उस समय, जब उसे प्रभु ने वर माँगने को कहा, दीनता माँगी। कोई कह सकता है कि प्रभु तो देता था कटोरी में, पर अभागिनी ने माँगा दोने में! फूटी कटोरी से साबित दोना सौ दर्जे अच्छा।

कदाचित् कोई तार्किक बीच में ही पूछ बैठे – 'तो फूटी कटोरी की बात ही क्यों?' मैं स्पष्ट कहूँगा – 'नहीं, पानी पीने की दृष्टि से तो साबित दोने और साबित कटोरी का मूल्य समान है; पर अन्दर पैठकर देखें तो वह धातु की कटोरी घात की वस्तु बन जाती है। कटोरी की छाती में एक बड़ी धुकधुकी लगी रहती है – 'मुझे कोई चुरा तो नहीं ले जायगा?' दोने के लिये यह भय असम्भव है, अतः वह निर्भय है।'

फिर कटोरी और साबित का योग ही मुश्किल से मिलता है। रामदास के शब्दों में – 'जो बड़ा, सो चोर।' ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े हैं कि आदमी बड़ा हो और प्रभु उस पर न्योछावर हों। ऐसे उदाहरणों का प्रायः अभाव ही है; और जो कहीं और कभी दीख पड़ा, तो इस रूप में कि जन्म का बड़ा, किन्तु बड़प्पन खोकर अत्यन्त दीन होकर – भगवान् के शरण आया, उसी दिन प्रभु ने उसे अपने निकट खींच लिया।

राजा बलि ने जब राजत्व का साज हटाकर मस्तक झुकाया, तब प्रभु ने उसके आँगन में खड़े रहना अंगीकार किया। गजेन्द्र को जब तक अपने बल का घमण्ड रहा, तब तक उसने सब कुछ करके देख लिया और जब गर्व गला, तब उसे दीनबन्धु की याद आयी। उसी दिन की घटना का नाम तो 'गजेन्द्र-मोक्ष' है।

और अर्जुन? जिस दिन वह अपनी जानकारी के ज्वर से जीवित छूटा, प्रभु ने उसे गीता सुनायी। पार्थ का प्रभु से ही मतभेद हो गया। बड़ा आदमी जो ठहरा! प्रभु के मत से उसके मत का सौतिया-डाह क्यों न हो? किन्तु बारह वर्ष के वनवास ने उसे 'महत्ता' से उतारकर 'सन्तता' की सेवा करने का अवसर दिया। जब जानकारी पर अधिष्ठित मत के पाँव डगमगाने लगे, तब उसने निकटस्थ प्रभु के पाँव पकड़े। 'मैं तो इन्द्रियोंका गुलाम हूँ, और मेरा 'मत' क्या? मेरी तो इन्द्रियाँ चाहे जैसा निश्चय करती हैं और मनरूपी मल्ल उस पर अपनी सही कर देता है। वहाँ धर्म को देख सकने वाली दृष्टि का गुजर कहाँ! प्यारे, मैं तुम्हारे द्वार का सेवक हूँ। मुझे तुम्हीं बचाओ।'

तब भगवान् की वाणी प्रस्फुटित हुई। गीता कही जाने लगी। परन्तु गीता कहते-कहते भी श्री कृष्ण ने एक बात तो कह ही डाली – 'बड़प्पन की बात तो खूब करते हो!' गर्ज यह कि बड़े लोगों में यदि किसी के प्रभु का प्यारा होने की बात सुनी जाती है तो वह उसी की, जो अपना बड़प्पन खोकर, अपनी महत्ता एक ओर रखकर छोटे-से-छोटा, दीन, निराधार बन गया। तब वह प्रभु का आत्मीय कहलाया।

जिसे जगत् का आधार है, उसकी जगदाधार से कैसी रिश्तेदारी? जिसके खाते में जगत् का आधार जमा नहीं रह गया, उसी का बोझ प्रभु अपने कन्धों पर ढोते हैं।

– सन्त श्री विनोबा भावे जी

(कल्याण पत्रिका, वर्ष 96, संख्या 4 से उद्धृत)

श्री गुरु पूर्णिमा शिविर-2022 (9-14 जुलाई 2022) - विवरण

गुरु पूर्णिमा शिविर का शुभारम्भ 9 जुलाई 2022 को हुआ और पूर्ति 14 जुलाई 2022 को हुई। 11 जुलाई की रात्रि से आरम्भ होकर 13 जुलाई प्रातः तक 36 घंटे का अखण्ड जाप किया गया। 13 जुलाई को ही गुरु पूजन हुआ। शिविर का समापन सभी आगन्तुकों को धन्यवाद देकर किया गया।

इस शिविर में 217 साधक-साधिकाओं ने भाग लिया। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर 10 जुलाई और 11 जुलाई को साधकों द्वारा किये गये प्रवचनों का सार नीचे दिया जा रहा है।

प्रवचन सार

श्रीमती सुशीला जायसवाल जी

गीता के अध्याय 14 में भगवान् ने समझाया है कि किस प्रकार प्रकृति से उत्पन्न सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। ये तीनों गुण हर समय शरीर में रहते हैं और समय-समय पर कोई एक गुण शेष दो गुणों को दबाकर हावी हो जाता है। उसकी पहचान यह होती है कि जिस समय इन्द्रियों में चेतनता और विवेक-शक्ति जागृत होती है उस समय समझना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है, जिस समय लोभ, सकाम भाव से कर्म करने की इच्छा, अशान्ति और विषय-भोगों की लालसा उत्पन्न होती है उस समय जानना चाहिये कि रजोगुण बढ़ा हुआ है और जिस समय कर्तव्य कर्मों के करने में आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि की प्रवृत्ति होती है उस समय जानना चाहिये कि तमोगुण बढ़ा हुआ है। भगवान ने आगे श्लोक 14 व 15 में बताया है कि इन तीनों में से किस गुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होने से क्या-क्या गति होती है। सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति, रजोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर मनुष्य लोक तथा तमोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर अधोगति होती है।

यदि भगवान के स्वरूप को प्राप्त करना है तो इन तीनों गुणों से अतीत होना पड़ेगा अर्थात् आत्मा को अकर्ता मानते हुए तीनों गुणों को ही कर्ता मानता हुआ शरीर का त्याग करे तो वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। गुणातीत के लक्षणों का वर्णन इस अध्याय के श्लोक 22 से 25 तक किया गया है जिनका पाठ इस साधना धाम में नित्य किया करते हैं।

श्लोक 19 में बताया गया था कि तीनों गुणों को लाँघकर ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। श्लोक 26 में तीनों गुणों को लाँघने का उपाय बताया है **'अव्यभिचारिणी भक्तियोग'**। जिस भक्ति में भक्त भगवान के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की उपासना व पूजा करता है उसे व्यभिचारिणी भक्ति कहा गया है। अव्यभिचारिणी भक्ति में केवल मात्र भगवान का आसरा होता है। जो कुछ कहना है उसी से कहना है, जो कुछ माँगना है उसी से माँगना है। एक ही मन्त्र का जाप करना है। अनुकूलता और प्रतिकूलता सब उसी की देन मानता हुआ खुशी-खुशी स्वीकार करना है। हर समय यह भाव रखे कि मैं भगवान का हूँ भगवान मेरे हैं, मैं भगवान के लिये हूँ, मेरे सब कार्य भगवान के लिये हैं, मेरा शरीर और सर्वस्व भगवान का है। (विनय पत्रिका पद 125)। इस प्रकार की भावना रखना ही अव्यभिचारिणी भक्ति कहलाती है।

श्रीमती रमन सेखड़ी जी

गीता अध्याय 4 का श्लोक 39 –

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

हमने अपने मन के भावों को गुरु के साथ जोड़ दिया तो श्रद्धा अटूट हो जाती है। श्रद्धा को दृढ़ बनाना है।

जरा आ शरण मेरे राम की

जिस प्रकार पानी के भरे हजार घटों में सूर्य का प्रतिबिम्ब बराबर पड़ता है उसी प्रकार घट-घट में राम रम रहा है।

जो जिस कक्षा में है गुरुदेव उसे वैसे ही ज्ञान देते हैं। हमें नहीं मालूम हम किस कक्षा में है – प्रभु को, गुरुदेव को पता है।

जैसे माँ बच्चे का ध्यान रखती है वैसे ही गुरुदेव हमारा ध्यान रखते हैं। कठपुतली की तरह हमें प्रभु के हाथ में नाचना है। अपनी इन्द्रियों को वश में रखना है। कार्य सभी करने हैं। रोना-धोना नहीं चाहिए। प्रभु से प्रार्थना करनी है। जितना हम परमात्मा के पास रहेंगे, संसार से दूर होते चले जायेंगे।

हमारी वाणी में मिठास होनी चाहिए। जलेबी रस में डूबी होती है तभी खाने में अच्छी लगती है। भगवान कहते हैं मुझसे जुड़ने पर बुद्धि योग मैं देता हूँ भक्त को। कृष्ण भगवान का जन्म, कर्म दिव्य हैं। जो व्यक्ति मुझे (भगवान को) तत्त्व से जान जाता है उसका पुनः जन्म-मरण नहीं होता, हम प्रभु में मिल जायेंगे। बूँद सागर में मिलने के बाद उसको अलग नहीं किया जा सकता है। अब हमें जागरूक होना है कुछ साथ तो जाना नहीं है, अतः असली पूँजी इकट्ठी करें। कर्म की पूँजी ही साथ रहेगी बस।

पूंजी राम-नाम का जाप

तुलसी ने विनय पत्रिका में लिखा है –

मम हृदय प्रभु भवन तोरा

अपने सभी काम बल्कि कोई भी सेवा बड़े ध्यान से करनी चाहिए। अपना पात्र साफ रखना है। बौद्धिक ज्ञान हमारा अन्तरतम साफ नहीं कर सकता है, आध्यात्मिक ज्ञान से सफाई होती है।

श्री अनिल मित्तल जी

पहली बात जो साधक यहाँ आये हैं वे बड़े सौभाग्यशाली हैं। इस संसार में हजारों व्यक्ति कर्मकाण्ड में फँसे हैं और उसी में सन्तुष्ट भी हैं। गंगा में गोता लगा रहे हैं, स्नान कर रहे हैं, वो भी ठीक है पर एक दूसरा भी पक्ष है। जब धीरे-धीरे निष्काम हो पाते हैं तभी अध्यात्म में प्रवेश कर पाते हैं। बिना आध्यात्मिक क्षेत्र में आये कल्याण नहीं हो सकता।

जीवन तीन प्रकार से बदलता है –

1. कोई सांसारिक घटना हो जाये तो हमें अध्यात्म में आने की इच्छा जग जाती है।
2. कोई परिवार में संस्कार मिला हो उससे अध्यात्म में प्रवेश होता है।
3. पूर्व के संस्कार हों।

गुरु की खोज करते लोग भटक रहे हैं, क्योंकि उन्हें Live गुरु चाहिए, परन्तु हमारे यहाँ ये कमी महसूस नहीं होती।

जो कष्ट मिलते हैं वे हमारे संस्कार के द्वारा होते हैं हमारे गुरु उस कष्ट को थोड़े में काट देते हैं। उनकी माया अद्भुत है।

गुरु मिलने के बाद तीन चीजों की आवश्यकता है – सत्संग में सेवा, प्रेम, समर्पण बताया जाता है, इसलिए सत्संग जरूरी है, क्या छोड़ना है – मोह।

हमारे भावों का क्षेत्र – भजन व कीर्तन के माध्यम से हम भाव के क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। भाव के क्षेत्र से ध्यान के क्षेत्र में आते हैं। जब हम आवाहन करते हैं तो बाहर की शक्ति को अन्दर उतारते हैं। आरम्भ में शब्दों के माध्यम से मन्त्र चलता है जब आगे की सीढ़ी पर पैर रखते हैं तो मन्त्र के स्पन्दन से परे हो जाते हैं। माला आवश्यक है। शुरुआत में कभी-कभी माला तो घूमती है पर राम-नाम नहीं चलता। अतः सजग रहें माला द्वारा मन्त्र जाप चलना चाहिए। फिर धीरे-धीरे अजपा जाप चलने लगेगा। अन्तर की यात्रा में सबसे आवश्यक ध्यान है।

श्रीमती कमला बहन जी

आध्यात्मिक साधन भाग 1 में सतत स्मरण बताया है। गीता में भी प्रभु ने बताया है **'तेषाम् सतत युक्तानाम',** जो सतत स्मरण करते हैं उन्हें बुद्धि-योग देता हूँ। जैसा साधक का स्तर होता है भगवान उसी के अनुसार उसको देते हैं। भगवान में निष्ठा रखने

वाले साधक की अपनी माँग नही होती है, उसे केवल भगवान पर ही एक मात्र निष्ठा होती है। फिर भगवान उसकी आवश्यकता के अनुसार स्वयं देते हैं। मन से भगवान का चिन्तन करना है, लोगों से भगवान की चर्चा करते हैं तो उससे प्रचार-प्रसार होता है। संसार की वस्तुओं से आत्मा की तृप्ति नहीं होती है, ईश्वर के चिन्तन मनन से आत्मा की तृप्ति होती है। फिर हमारी इन्द्रियों और प्राण की अलग-अलग माँगे समाप्त होती जाती हैं। एक निष्ठ मनोवृत्ति होती जाती है। साधक अपने समय को सार्थक करता है। सन्तुष्ट की पहिचान है बेचैनी का अभाव।

भक्त मस्त रहता है, उनकी सारी जिम्मेदारी भगवान ले लेते हैं। प्रेम में माँग नहीं होती। सांसारिक या पारिवारिक माँग न हो। कर्मयोग और भक्तियोग साधन हैं साध्य को प्राप्त करने के लिये।

जो प्रेम पूर्वक भगवान का भजन करते हैं भगवान उसे बुद्धियोग देते हैं, उस पर विशेष अनुग्रह करते हैं, अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट करके ज्ञान देते हैं। इस कृपा का सतत स्मरण आवश्यक है। जब भक्तियोग प्राप्त हो जाता है तो ज्ञान वैराग आता चला जाता है क्योंकि भक्ति के बेटे हैं ज्ञान बैराग।

राम विमुख सम्पति प्रभुताई
जाइ रही पाई बिनु पाई।

सुबह शाम तो भजन करते हैं। बचे हुए 22 घण्टे का सदुपयोग करना है।

शक्ति अनन्त छिपी जो मुझमें
पहचान सकूँ डर मर जाये।

गुरुदेव जी की उँगली पकड़ लेते हैं तो डर मर जाता है, हम निर्भय हो जाते हैं, प्रसन्न रहते हैं।

लगाओ गुरु से लगन धीरे-धीरे।

गुरु के चरण का सहारा लेने से सभी भ्रम, डर समाप्त होता चला जाता है।

श्रीमती शशी बाजपेई जी

हमारा मार्ग कर्म प्रधान भक्ति प्रधान है। भक्ति प्रधान मार्ग सरल है।

भक्ति स्वतन्त्र है, सभी सुख की खान है। हमारी साधना, परिवार में रहते हुए, सभी वस्तुओं का सदुपयोग करते हुए, भक्ति मार्ग में लगे रहना है।

भगवान भाव-ग्राही हैं क्रिया-ग्राही नहीं हैं। जो प्रेम पूर्वक पुष्प, फल, जल देता है उसे स्वीकार करते हैं। जीवन को कैसे बिताना है। विधि विधान की इतनी आवश्यकता नहीं है। जो निरन्तर मेरा जाप करते है उनके लिये सुलभ हो जाता हूँ। गीता में भगवान बताते हैं – जो भी हम उपभोग करें भगवान को अर्पित करके करें। तेरी देन तुम्हें अर्पण है।

भागने की आवश्यकता नहीं है। जो करते हो वही करो। बस ईश्वर को उसमें जोड़ देना है। मैं मैं का परित्याग करना है।

धन है परमात्मा का, तन परमात्मा का, घर, मकान, दुकान सब तो ईश्वर के हैं। जैसे कमल के पत्ते में जल व्याप्त नहीं होता उसी प्रकार संसार हम में व्याप्त नहीं होना चाहिए। जीवन में हवन होना चाहिए। हवन का अर्थ त्याग। हमारा पूरा जीवन यज्ञमय होना चाहिए। साधना और सेवा मिल कर **सोने में सोहागा** होना है इसलिये सेवा में हमेशा तत्पर रहना चाहिए। हम भगवान के पुत्र हैं हमें परमात्मा की याद बनाये रखना चाहिए। जीवन में तप होना चाहिए। बुद्धि विवेकशील हो। दूसरों को खुश कैसे करें, दान, तप, यज्ञ ये जीवन में होना ही चाहिए।

श्रीमती उर्मिला सिंह जी, अहमदाबाद

पत्र पीयूष में गुरुदेव ने बताया राम का अवलम्बन है साधन में

बंदउँ राम नाम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

राम नाम हमें सारी शक्तियों को देने वाला है। भगवान शंकर उमा को बताते हैं राम नाम से मुक्ति होती है। ध्रुव ने अचल अनूपम स्थान बनाया। नाम लेने से भवसिन्धु सूख जाता है। कलियुग में एक नाम का आधार है। खाते-पीते, जागते-सोते, चलते-फिरते इसे जप सकते हैं। इस राम नाम को चाहे भाव से या

अभाव से जपो इसका लाभ मिलता है। इसी से इसे शंकर जी ने महामन्त्र की उपमा दी। वाल्मीकि जी ने तो उल्टा नाम जपा, उनसे सीधा नाम जपा ही नहीं गया, फिर भी वह ब्रह्म ऋषि बन गये। राम नाम दीपक को मुख में रखने से भीतर बाहर उजाला होता है, अज्ञानता दूर हो जाती है, ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

हमारे अन्दर की सुषुप्त चेतना जग जाती है। सभी साधन किया पर राम नाम जपने से सब तन कंचन हो जाता है। जितना हम राम नाम जपेंगे उतनी जल्दी हमारे अन्दर परिवर्तन होता चला जाता है। राम राम रटने की आदत डालनी पड़ती हैं –

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान॥

इसी प्रकार अभ्यास करना होगा। राम नाम अमूल्य निधि है। मानसिक रोग की दवा राम नाम ही है। गुरु मन्त्र लेकर घर बैठना नहीं चाहिए। साधन भजन करते रहना चाहिए। नित्य सत्संग अवश्य करना चाहिए। इससे बहुत फर्क पड़ता है। **राम का नाम हृदय में धरौ न सड़ै न गलै न घुनै न चोरी हो।** गुरु की बताई विधि से हम साधन भजन करेंगे तो नित्य प्रति हम आगे बढ़ते चले जायेंगे।

श्री विजय भण्डारी जी

गुरुदेव ने हम पर बड़ी कृपा की है। अब स्वयं की कृपा की बारी है। केवल शिविर में पिकनिक की तरह रहने से कुछ नहीं होने वाला। गुरु चरणों में माथा टेकें प्रतिदिन, पर गुरु की सीख को समझना आवश्यक है। अपनी समझ बढ़ायें और साधना मार्ग में आगे बढ़ते जायें।

करन करावन आपै नाथ
नानक के कुछ नाहीं हाथ।

नानक जी सभी जगह गये और जहाँ भी गये, यही दोहराते रहे – **'मैं नाही प्रभु सब कुछ तेरा'।**

हमने अपने धर्म ग्रन्थों को पुस्तकालय में कैद कर दिया। विदेशी संस्कृति अपना ली। गुरुदेव ने गृहस्थ जीवन को ही आश्रम बनाने को कहा। एक सज्जन उन्हें आश्रम के लिए बहुत सम्पत्ति देने को तैयार थे, पर गुरुदेव ने स्वीकार नहीं की। गुरुदेव ने इस मार्ग को गृहस्थ जीवन को आसान बनाने के लिए किया। सेवा, सिमरण, नाम जप, ध्यान का आश्रय लेकर इस मार्ग पर चलेंगे तो हम प्रभु के समीप हो जायेंगे। राम कृपा हम पर बरसेगी ऐसा विश्वास दिलायें अपने को।

व्यक्ति को जीवन में सबसे मेल मिलाप रखना पड़ता है। अपने आचरण और व्यवहार को शीशे जैसा पारदर्शी बनाना है। कुछ छिपाना नहीं है। माँगें पहले शरीर की होती हैं, फिर मन की होती हैं, फिर बुद्धि की होती हैं। गुरुदेव ने बताया गृहस्थ मार्ग में चलकर के अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ना है। प्रेम, सद्भावना पर हमारी उन्नति आधारित है। साधना व व्यवहार एक पुस्तक है। इसको अवश्य पढ़ना चाहिए। सद्भावना होनी चाहिए सबके प्रति, दूसरों के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए।

श्रीमती अरुणा पाण्डेय जी

गुरु पूर्णिमा के पर्व पर, गुरु का जीवन में क्या महत्व है इस पर प्रकाश डालना चाहते हैं। ईश्वर ने मनुष्य के रूप में मानव का कल्याण करने के लिए गुरु को अपनी असीम शक्तियाँ देकर भेजा है।

तुलसी दास जी ने गुरु का महत्व बहुत सुन्दर बताया है – गुरु के पैर के नाखून में मणियों का ऐसा प्रकाश होता है जो हृदय के नेत्र खोल देता है। बस स्मरण मात्र करना होता है। मोह रूपी अन्धकार को दूर कर देता है। परन्तु वे बड़े भाग्यवान होते हैं जिनके हृदय में वह प्रकाश आता है।

गुरु साधक के जीवन की समस्या को दूर करने की युक्ति बताता है। हमारे गुरुदेव ने पत्र संख्या 314 में बताया है कि जीवन की समस्या और आध्यात्मिक साधन को मैं अलग नहीं देखता। समस्याओं से भागना साधना से भागना है। गुरुदेव ने बताया है राम नाम एक अमूल्य रत्न है। नाम के द्वारा अन्तर मल धुलते चले जाते हैं। नाम भीतर बाहर सभी कुछ उज्ज्वल व दिव्य कर देता है।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक का विवरण

गुरु पूर्णिमा शिविर की अवधि में कार्यकारिणी की जो बैठक दिनांक 22 व 23 जुलाई 2022 को साधना धाम, हरिद्वार के परिसर में सम्पन्न हुई उसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित रहे:–

1. श्री विष्णु कुमार गोयल – अध्यक्ष
2. श्रीमती सुशीला जायसवाल – वरिष्ठ उपाध्यक्ष
3. श्री अनिल मित्तल – उपाध्यक्ष
4. श्रीमती रमन सेखड़ी – सचिव
5. श्री रमेश चन्द्र गुप्त – उपसचिव
6. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री – कोषाध्यक्ष
7. श्री रविकान्त भण्डारी – पदेन सदस्य
8. श्रीमती कमला सिंह वर्मा – सदस्य
9. श्री दीपक दीक्षित – सदस्य
10. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल – सदस्य
11. श्री रमेश जायसवाल – सदस्य
12. श्री विजयेन्द्र पाल भण्डारी – सदस्य
13. श्रीमती कृष्णा भण्डारी – सदस्य
14. श्री पुरन्दर तिवारी – सदस्य
15. श्रीमती रेवा भामरी – सदस्य
16. श्रीमती अरुणा पाण्डेय – सदस्य
17. श्री हरपाल सिंह राजपूत – सदस्य
18. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल – सदस्य
19. श्री मोहित मित्तल – सदस्य
20. श्रीमती सोमवती मिश्रा – सदस्य
21. श्रीमती हर्ष कपूर – सदस्य
22. श्री संजय सेखड़ी – आमन्त्रित
23. श्री समीर पाण्डेय – आमन्त्रित
24. श्री अजित अग्रवाल – आमन्त्रित
25. श्री कृष्ण अवतार अग्रवाल – आमन्त्रित

गुरु वन्दना के पश्चात विधिवत बैठक की कार्यवाही शुरू की गई। पिछली बैठक के विवरण का सर्वसम्मति से अनुमोदन करने के पश्चात निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार विमर्श हुआ अथवा निर्णय लिये गये:–

1. माँ गंगा की आरती में साधकों को स्वरुचि अनुसार भाग लेने की अनुमति प्रदान की गई।
2. धाम में साधकों को अनुशासित रूप से रहने एवं व्यवस्था तथा साधना पक्ष को सन्तुलित रखने पर सहमति प्रदान की गई।
3. कतिपय श्रद्धालु साधकों की वर्ष पर्यन्त उपस्थिति की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 15 दिन तक धाम में आवास की अनुमति देने के लिये प्रबन्धक महोदय को अधिकृत किया गया। इससे अधिक आवास की अनुमति अध्यक्ष अथवा सचिव द्वारा दी जायेगी। इसी क्रम में वरिष्ठ साधक श्री राम कृपाल कटियार जी को उनकी लिखित प्रार्थना पर विचार करते हुए प्रबन्धक के कार्य में सहायता करने हेतु एक माह की अनुमति दी गई।
4. साधकों को पहचान-पत्र जारी करने हेतु श्री समीर पाण्डेय जी के प्रयासों की सराहना की गई तथा उनके द्वारा दिये सुझावों पर विचार किया गया।
5. दानदाताओं द्वारा दिगोली धाम अथवा साधना धाम हरिद्वार में एक बार में एक लाख या अधिक की राशि के दान देने पर दानदाता का नाम सामूहिक पत्थर पर लिखवाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया।
6. दिगोली धाम में सुधार एवं विस्तार हेतु श्री विष्णु कुमार गोयल अध्यक्ष जी के कार्यों की सराहना

की गई तथा इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने के लिये अधिकृत किया गया।

7. नाली के पानी को गंगा में जाने से रोकने की व्यवस्था करने के लिये प्रबन्धक महोदय को अधिकृत किया गया।
8. शिविर की अवधि में बेसमेंट में ठहरने वाले साधकों की सुविधा हेतु अतिरिक्त बाथरूम बनाने के लिये प्रबन्धक महोदय को अधिकृत किया गया।
9. साधना धाम हरिद्वार के लिये एक नया दुपहिया वाहन प्रबन्धक, साधना धाम के नाम से खरीदने के लिये श्री रविकान्त भण्डारी व श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री जी को अधिकृत किया गया।
10. साधना परिवार की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये कार्यों का विभाजन किया गया जिसके लिये निम्नलिखित समितियों का गठन किया गया:–
    1. साधना परिवार के लेखा व परीक्षा हेतु श्री हरपाल सिंह राजपूत की नियुक्ति को सर्वसम्मति से स्वीकृति दी गई।
    2. स्थानीय प्रबन्धन समिति – इस समिति के चार सदस्य होंगे:–
        1. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल - संयोजक
        2. श्री रविकान्त भण्डारी - सदस्य
        3. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल - सदस्य
        4. श्री हरपाल सिंह राजपूत - सदस्य
    3. वित्तीय एवं निर्माण समिति – इस समिति के लिये निम्नलिखित सदस्यों का चयन किया गया:–
        1. श्री संजय सेखड़ी - संयोजक
        2. श्री अनिल मित्तल - सदस्य
        3. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल - सदस्य
        4. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल - सदस्य
        5. श्री हरपाल सिंह राजपूत - सदस्य
        6. श्री रमेश जायसवाल - सदस्य
        7. श्री दीपक दीक्षित - सदस्य
        8. श्री समीर पाण्डेय - सदस्य
        9. श्री मोहित मित्तल - सदस्य

श्रीमती रमन सेखड़ी, सचिव **श्री विष्णु कुमार गोयल, अध्यक्ष**

❖ ❖ ❖

बाल-साधना शिविर-2022 (2-7 जून 2022) - विवरण

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हमारे साधना धाम में प्रत्येक वर्ष बाल-साधना शिविर का आयोजन होता था। परन्तु कोविड़ महामारी के कारण गत दो वर्ष बाल-शिविर का आयोजन नहीं हो पाया। परन्तु इस वर्ष हमारे गुरु रामानन्द जी एवं महाशक्ति श्री राम की कृपा से इस बार बाल-साधना शिविर का आयोजन 2 जून से प्रारम्भ होकर 7 जून 2022 तक चला। जिसमें भारत के प्रत्येक राज्य से आये 130 बच्चों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया।

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस बार भी शिविर का आयोजन पूरे उल्लास के साथ आरम्भ हुआ जिसमें 5 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक के बच्चों ने भाग

लिया। हमारे अध्यक्ष श्री गोयल जी के द्वारा शिविर की पूरी रूप-रेखा तैयार की गई और सभी छोटे एवं बड़े साधकों को शिविर से जुड़े विभिन्न कार्यों की जिम्मेदारी दी गई।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शिविर में समय-सारणी के द्वारा सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। प्रत्येक दिन सभी बच्चों को प्रातः 5:00 बजे उठकर और प्रातः 5:30 बजे ध्यान-कक्ष में बैठकर ध्यान एवं आरती में भाग लेना होता है। उसके पश्चात प्रातः लगभग 6:15 बजे सभी बच्चों को चाय एवं शिकंजी वितरित की जाती है। प्रातः लगभग 6:30 बजे सभी बच्चे एवं उनके अभिभावक सैर के लिये नील धारा की ओर जाते थे और वहीं पर हमारे अविनाश जी के द्वारा योग-अभ्यास कराया जाता था। सैर के पश्चात समी बच्चे साधना-धाम में वापिस आकर बड़ों की देख-रेख में गंगा-स्नान करते थे। उसने पश्चात गर्मा-गर्म एवं स्वादिष्ट नाश्ते का आनन्द सभी बच्चे एवं बड़े लोग लेते थे।

प्रातः 9:00 बजे गीता कक्षा में सभी बच्चों के द्वारा गीता एवं रामायण का पाठ होता था। उसके पश्चात अविनाश जी के द्वारा नैतिक ज्ञान पर आधारित कहानियों को बच्चों के समक्ष सुनाया जाता था ताकि सभी बच्चों का नैतिक विकास हो सके।

गीता कक्षा के बाद हमारी रमन आण्टी के द्वारा हमारे गुरुदेव रामानन्द जी के जीवन-चरित्र को बहुत ही सजीव ढंग से बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

दोपहर के भोजन के पश्चात सभी बच्चे विभिन्न नाटकों का अभ्यास एवं भजनों का अभ्यास करते थे ताकि शाम को व्यावहारिक साधना एवं विनोद-गोष्ठी की कक्षा में बढ़चढ़ कर भाग ले सकें। शाम को 3:30 बजे हमारी राखी जी एवं सभी साधकों के द्वारा अमृतवाणी पाठ का आयोजन होता था। उसके बाद सभी बच्चे भजनों का गायन करते जिससे हमारे धाम का वातावरण और अधिक भक्तिमय हो गया। लगभग 4:30 बजे से 5:00 बजे तक हमारे अविनाश जी, योगेश पण्डित जी के द्वारा एवं वरिष्ठ साधकों के द्वारा व्यावहारिक ज्ञान का वाचन होता था।

शाम को 5:00 बजे सभी बच्चों को शिकंजी एवं बड़ों को चाय का वितरण होता था। उसके बाद सभी बच्चे विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेते थे।

शाम को 6.30 बजे से 7:30 बजे तक ध्यान-कक्ष में सभी बच्चे ध्यान का अभ्यास और राम नाम जाप करते और सभी लोग शाम की आरती में बढ़-चढ़ कर भाग लेते। रात्रि भोजन के पश्चात विनोद-गोष्ठी का आयोजन होता था जिसमें बच्चों के द्वारा नैतिक शिक्षा पर आधरित नाटकों का मंचन होता था।

इस प्रकार पाँच दिन कैसे बीते पता भी नहीं चला। अन्तिम दिन हमारे अध्यक्ष श्री विष्णु गोयल जी एवं श्री विजय भण्डारी जी ने गुरु महाराज जी का धन्यवाद किया। उसके पश्चात सभी बच्चों एवं बड़ों का आभार व्यक्त किया और सभी बच्चों को प्रमाण-पत्र एवं उपहार द्वारा सम्मानित किया गया। इस बार रमन आण्टी के द्वारा हमारे अविनाश जी को शॉल देकर सम्मानित किया गया। मैं अपनी तरफ से भी सभी लोगों का धन्यवाद करता हूँ कि मुझे इस योग्य समझते हैं कि मैं गुरु-धाम में अपनी निस्वार्थ सेवा दे पाऊँ। मेरी भगवान से यही प्रार्थना है जब तक इस शरीर में श्वास रहे मैं इसी तरह साधना धाम की सेवा करता रहूँ।

आपका अपना **अविनाश**

23.5.2022 से 20.8.2022 तक के दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Bank of India, Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Punjab National Bank, Haridwar
A/c No.: 00112010000220
I.F.S. Code: PUNB0001110

कृपा करके जमा करवाई हुई राशि का विवरण एवं अपना नाम और पता तथा PAN या आधार कार्ड नम्बर, पत्र अथवा फोन द्वारा साधना धाम कार्यालय में अवश्य सूचित करें। जिससे आपको रसीद आसानी से प्राप्त हो जायेगी।

– **रवि कान्त भण्डारी,** प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 09872574514, 08273494285

1.	रीवा भंवरी, नई दिल्ली	100000	19.	अभिनव सेखड़ी, दिल्ली	11000
2.	नीता निगम, लखनऊ	100000	20.	सुमन अग्रवाल, मुरादाबाद	11000
3.	ध्रुव धनराज बहली, गुरुग्राम	51000	21.	सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	11000
4.	गुरु पूर्णिमा दान संग्रह (1) हरिद्वार	35517	22.	मीरा चन्देल, नोएडा	11000
5.	गुरु पूर्णिमा दान संग्रह (2) हरिद्वार	32590	23.	अजय कुमार अग्रवाल, बरेली	11000
6.	दान पेटी 19.12.2021 से 3.7.2022	32417	24.	सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	11000
7.	जितेन्द्र चौहान, मेरठ	25000	25.	सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	11000
8.	जितेन्द्र चौहान, मेरठ	25000	26.	एसएम इण्डस्ट्रीज, गुरुग्राम	11000
9.	सूरज भान सक्सेना, कानपुर	21000	27.	एसएम इण्डस्ट्रीज, गुरुग्राम	11000
10.	प्रतीक मित्तल/अनिल मित्तल, बरेली	21000	28.	संजीव शुक्ला, जबलपुर	11000
11.	स्वतन्त्र बाला भण्डारी, अमृतसर	20000	29.	नरेश चन्द्र, कानपुर	10100
12.	विभा पाण्डेय, कानपुर	15100	30.	आर.के. गुप्ता, हल्द्वानी	10000
13.	कमला वर्मा, कानपुर सत्संग	13300	31.	शशि कान्त कुलश्रेष्ठ, गाजियाबाद	7501
14.	डॉ. पुष्पा अनिल गुप्ता, बालामाऊ	12000	32.	राम चन्द्र लाल, पूरनपुर	7100
15.	दीपांश गुप्ता, कानपुर	11100	33.	राम कृपाल कटियार, शाहजहाँपुर	7100
16.	प्रशान्त सलूजा, लुधियाना	11000	34.	कृष्णा देवी, काशीपुर	5100
17.	सचिन अग्रवाल, फरीदाबाद	11000	35.	आकांक्षा जैन, दिल्ली	5100
18.	कृष्णा औतार अग्रवाल, बीसलपुर	11000	36.	राधा मिश्रा, कानपुर	5100

37.	राजकुमार अग्रवाल, बरेली	5100	64.	दीप्ति त्रिपाठी, कानपुर	4100
38.	रमन भण्डारी, अमृतसर	5100	65.	मीना बिजलवान, हरिद्वार	4000
39.	अतुल कुमार, हरदोई	5100	66.	डॉ. रितु, जालन्धर	3100
40.	प्रकाश चन्द्र अग्रवाल, बरेली	5100	67.	जनक दुलारी, कानपुर	3100
41.	राकेश अग्रवाल, दिल्ली	5100	68.	नीलम पुरी, गुरुग्राम	3100
42.	हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5100	69.	निर्मल जोशी, हल्द्वानी	3100
43.	विजय कंसल, बरेली	5100	70.	उषा रानी, नवांशहर	3100
44.	विष्णु अग्रवाल, बरेली	5100	71.	नीलम मल्होत्रा, नई दिल्ली	3100
45.	सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100	72.	शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	3100
46.	रुचिका सेठी, दिल्ली	5100	73.	देवांग बहल, गुरुग्राम	3100
47.	आर.सी. गुप्ता, गाजियाबाद	5100	74.	रजनीश कुमार, बरेली	3000
48.	उषा गुप्ता, गाजियाबाद	5100	75.	शिखा मिश्रा, कानपुर	2569
49.	विष्णु अग्रवाल, बरेली	5100	76.	मीना बिजलवान, हरिद्वार	2500
50.	संजय अग्रवाल, फरीदाबाद	5100	77.	शशि अग्रवाल, हरिद्वार	2500
51.	जय प्रकाश डंगवाल, देहरादून	5001	78.	राकेश कुमार, पीलीभीत	2500
52	रीता गुप्ता, लखनऊ	5000	79.	शशि अग्रवाल, हरिद्वार	2500
53.	अजय आनन्द, गाजियाबाद	5000	80.	मंजू जायसवाल, कानपुर	2500
54.	सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5000	81.	मीना बिजलवान, हरिद्वार	2500
55.	हर्ष कपूर, गुरुग्राम	5000	82.	शशि अग्रवाल, हरिद्वार	2500
56.	हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000	83.	सुधा सक्सेना, कानपुर	2500
57.	संजीव शुक्ला, ज्वालापुर	5000	84.	मनोज कुमार गुप्ता, बीसलपुर	2500
58.	प्रभा गुप्ता, पूरनपुर	5000	85.	विवेक गुप्ता-श्री सी.पी. गुप्ता, बरेली	2500
59.	दर्शन कुमार, लुधियाना	5000	86.	लज्जावती अरोड़ा, गाजियाबाद	2500
60.	रवि कान्त शुक्ला, देहरादून	5000	87.	सुधीर गुप्ता, कानपुर	2400
61.	विजय रतन तुली, गुरुग्राम	5000	88.	गिरिजा देवी, कानपुर	2200
62.	दिव्या नन्द्राजोग, दिल्ली	5000	89.	अरुणा पाण्डेय, कानपुर	2200
63.	विशाल श्रीवास्तव, नोएडा	4500	90.	ललित जोशी, हल्द्वानी	2200

91. सूरज भान सक्सेना, कानपुर	2200	118. मीना साहू, नोएडा	2100
92. राधिका अग्रवाल, बीसलपुर	2100	119. आदेश कुमार अग्रवाल बरेली	2100
93. मुरारी लाल गुप्ता, बरेली	2100	120. गौरव व शानू अग्रवाल, पीलीभीत	2100
94. हृदय नाथ सिंह, बरेली	2100	121. दीपक अग्रवाल, पीलीभीत	2100
95. दया तिवारी, कानपुर	2100	122. राधा मिश्रा, कानपुर	2100
96. राधे श्याम, बीसलपुर	2100	123. डॉ. आकांक्षा अग्रवाल, मेरठ	2100
97. उमा अग्रवाल, मेरठ	2100	124. सुभाष चन्द्र ग्रोवर, दिल्ली	2100
98. ज्ञानवती शुक्ला, गाजियाबाद	2100	125. अरविन्द पीपरसेनिया, कानपुर	2100
99. संजय अग्रवाल, फरीदाबाद	2100	126. अजितेश जायसवाल, बरेली	2100
100. चन्दन शर्मा, गुरुग्राम	2100	127. अमीन गुप्ता, दिल्ली	2100
101. अरुण प्रकाश तिवारी, फर्रुखाबाद	2100	128. प्रमोद लता पाण्डेय, कानपुर	2100
102. प्रेम चन्द, दिल्ली	2100	129. स्नेह लता दुबे, कानपुर	2100
103. धीरज भार्गव, नोएडा	2100	130. अर्पण अग्रवाल, बरेली	2100
104. मोहिनी गुप्ता, अहमदाबाद	2100	131. प्रवीण शर्मा, बदायूँ	2100
105. शशि वाजपेयी, कानपुर	2100	132. व्यास तिवारी, हरिद्वार	2100
106. शिव कुमार सिंह, कानपुर	2100	133. साधना पोरवाल, अहमदाबाद	2100
107. सरोज भल्ला, नई दिल्ली	2100	134. हरीश चन्द्र रस्तोगी, बीसलपुर	2100
108. श्री योगेश कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	2100	135. अनिल चन्द्र मित्तल, बीसलपुर	2100
109. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ला, इलाहाबाद	2100	136. हरिओम प्रकाश, काशीपुर	2100
110. राम शंकर मिश्रा/सोहन सिंह, कानपुर	2100	137. अभय/अनमोल मित्तल, बीसलपुर	2100
111. के.एल. सेठी, दिल्ली	2100	138. चन्द्र कान्त, नवांशहर	2100
112. नीरज बहल, दिल्ली	2100	139. देवेंद्र कुमार सिंह, बरेली	2100
113. मनमोहन मिश्रा/कृष्णा त्रिपाठी	2100	140. ज्ञानवती शुक्ला, कानपुर	2100
114. कमल कपूर, बरेली	2100	141. संजीव शुक्ला, जबलपुर	2100
115. मधु बाला, हरिद्वार	2100	142. चन्द्र मोहन शर्मा	2100
116. जोगिन्दर पाण्डेय, कानपुर	2100	143. ऑनलाइन	2100
117. राकेश चन्द्र अग्रवाल, बीसलपुर	2100	**कुल योग**	**1037395**

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1.	अध्यात्म विकास	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
2.	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	
3.	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	
4.	Evolutionary Outlook on Life	
5.	Evolutionary Spiritualism	
6.	जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
7.	गीता विमर्श	श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम 7 अध्यायों की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
8.	व्यावहारिक साधना	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये, (2) दम्पत्ति के लिये, (3) माता-पिता के प्रति का संकलन
9.	कैलाश-दर्शन	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा का एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन
10.	गीतोपनिषद	श्रीमद्भगवद्गीता के आठ से अठारह अध्याय तक स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या
11.	हमारी साधना	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
12.	हमारी उपासना	
13.	साधना और व्यवहार	
14.	अशान्ति में	
15.	मेरे विचार	
16.	As I Understand	
17.	My Pilgrimage to Kailsah	
18.	Sex and Spirituality	जीवन-रहस्य (प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
19.	Our Worship	हमारी साधना
20.	Our Spiritual Sadhana Part-I	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)
21.	Our Spiritual Sadhana Part-II	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
22.	स्वामी रामानन्द-एक आध्यात्मिक यात्रा	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23.	पत्र-पीयूष	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन
24.	स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवम् वैद्य श्री सत्यदेव
25.	स्वामी रामानन्द-वचनामृत	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन
26.	मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन
27.	पत्तियाँ और फूल	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन
28.	दैनिक आवाहन विधि	स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित - श्रीमती महेश प्रकाश
29.	Letters to Seekers	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन
30.	आत्मा की ओर	
31.	जीवन विकास - एक दृष्टि	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32.	विकासात्मक अध्यात्म	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33.	गुरु के प्रति निष्ठा	तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 1)	अनाम साधिका
35.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 2)	
36.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 3)	
37.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 4)	
38.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 5)	
39.	श्रीराम भजन माला	श्री सूर्य प्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
40.	माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	मीरा गुप्ता
41.	पत्र-पीयूष सार	पत्र-पीयूष का संग्रहीत संस्करण
42.	गीता पाठ	
43.	गृहस्थ और साधना	
44.	प्रभु दर्शन	
45.	प्रभु प्रसाद मिले तो	
46.	गीता प्रवेशिका	हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी में गीता का संग्रहीत संस्करण - रमेश चन्द्र गुप्त

वार्षिक शिविर-2022 कानपुर

शिविर-स्थलः जे.के. मन्दिर के पीछे पाण्डुनगर सोसाइटी धर्मशाला गणेश शंकर विद्यार्थी स्कूल के सामने, कानपुर

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्री स्वामी रामानन्द साधना परिवार, कानपुर में **'वार्षिक शिविर'** का आयोजन कर रहा है। यह शिविर पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा से दिनांक 15 से 18 अक्तूबर 2022 तक होना निश्चित हुआ है।

18 अक्तूबर 2022 को प्रातः 7 बजे पूर्ति एवं 12.00 बजे भण्डारा होगा जिसमें सभी साधक आमन्त्रित हैं। साधना परिवार के सभी भाई-बहिनों से आग्रह है कि कानपुर शिविर में अपना अमूल्य समय निकाल कर सम्मिलित हों।

आगन्तुकों से निवेदन है कि अपने आगमन की सूचना समय से निम्न पते पर दें:-

श्रीमती सुशीला जायसवाल, 105/589 श्रीनगर, कानपुर, मोबाइलः 09322185891

बीसलपुर साधना शिविर-2022

शिविर स्थानः श्री अग्रवाल सभा भवन, स्टेशन रोड, बीसलपुर

17 नवम्बर 2022 सायं शिविर प्रारम्भ होगा और 20 नवम्बर 2022 को प्रातः पूर्ति होगी।

साधकों के लिए बर्तन एवं बिस्तर की व्यवस्था है। बीसलपुर पहुँचने के लिए बरेली से बसें हर 15 मिनट बाद चलती रहती हैं। शाहजहाँपुर से बस एवं रेल सेवा दोनों उपलब्ध हैं। बसें प्रत्येक 1 घन्टे के अन्तराल से एवं रेल छोटी लाइन रेलवे स्टेशन से प्रातः 6 बजे से 10 बजे तक और दोपहर 1 बजे से सायं 5.30 बजे तक उपलब्ध हैं। साधना परिवार के सभी भाई-बहिनों से आग्रह है कि बीसलपुर शिविर में अपना अमूल्य समय निकाल कर सम्मिलित हों।

आगन्तुकों से निवेदन है कि अपने आगमन की सूचना समय से निम्न पते पर दें:-

श्री सुरेन्द्र कुमार, बीसलपुर, जिला पीलीभीत, मोबाइलः 09410818880